प्रकाशक
साहित्य-संस्थान
राजस्थान विश्व विद्यापीठ,
उदयपुर

मूल्य २।।।)

मुद्रक
विद्यापीठ प्रेस, उदयपुर

वक्तव्य

साहित्य-संस्थान राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर विगत २१ वर्षों में उदयपुर और राजस्थान में साहित्यिक, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक कलात्मक सामग्री एवं शिलालेखों की शोध खोज, संग्रह, संपादन और प्रकाशन कार्य करता आ रहा है। विशेषकर साहित्य-संस्थान ने राजस्थान में यत्र तत्र बिखरे हुए प्राचीन साहित्य, लोक-साहित्य, इतिहास पुरातत्व और कला विषयक वस्तुओं को प्राप्त करने के लिये निरन्तर प्रयत्न किया है। परिणाम स्वरूप लगभग ४८ महत्त्वपूर्ण और उपयोगी ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है। साहित्य-संस्थान के अन्तर्गत निम्न लिखित विभाग गतिशील हैं—

(१) प्राचीन साहित्य-विभाग,
(२) लोक साहित्य-विभाग,
(३) इतिहास पुरातत्व-विभाग,
(४) अनुसन्धान पुस्तकालय एवं अध्ययन गृह,
(५) संग्रहालय-विभाग,
(६) राजस्थानी प्राचीन साहित्य-विभाग,
(७) पृथ्वीराज रासो एवं राणा रासो-सम्पादन संशोधन विभाग
(८) भील साहित्य-संग्रह-विभाग,
(९) नव साहित्य-सृजन-विभाग,
(१०) संस्थानीय मुख पत्रिका-'शोध पत्रिका' संपादन विभाग,

(११) संस्कृत-'राज प्रशस्ति' ऐतिहासिक महाकाव्य सम्पादन विभाग,
(१२) प्राचीन कला प्रदर्शनी विभाग,

इनके अतिरिक्त 'सामान्य विभाग' के अन्तर्गत अन्यान्य कई प्रवृत्तियाँ चलती रहती है. उनमें मुख्य २ ये हैं:—

(१) महाकवि सूर्यमल आसन' भाषण माला
(२) म० म० डा० गौरीशंकर 'ओझा आसन ,,
(३) उपन्यास सम्राट् 'प्रेमचद आसन' ,,
(४) निबन्ध-प्रतियोगिताएँ.
(५) भाषण प्रति योगिताएँ,
(६) कवि सम्मेलन
(७) साहित्यकारों एवं महाकवियों के जयन्ति-समारोह ।

इस प्रकार साहित्य-संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर अपने सीमित और अत्यल्प साधनों से राजस्थानी साहित्य, संस्कृति और इतिहास के क्षेत्रों में विभिन्न विघ्न बाधाओं के होते हुए भी निरन्तर प्रागतिक कार्य कर रहा है। राजस्थान के गौरव-गरिमा की महिमामयी झाँकी अतीत के पृष्ठों में अंकित है; पर आवश्यकता है. इसके पृष्ठों को खोलने की। साहित्य-संस्थान नम्रता के साथ इसी ओर अग्रसर है और प्रस्तुत पुस्तक साहित्य-संस्थान के तत्वावधान में तैयार करवाई गई है।

साहित्य-संस्थान के संग्राहकों ने अनेक स्थानों में घूम घूम और ढूँढ ढूँढ कर २२००० के लगभग छन्दों का और प्राचीन हस्त लिखित अनेक उपयोगी ग्रंथों का भी संग्रह किया है। इनमें विविध प्रकार के प्राचीन छन्द सुरक्षित हैं। विभिन्न प्रकार की ऐतिहासिक घटनाओं एवं व्यक्तियों आदि का वर्णन मिलता है। ये विभिन्न प्रकार के गीत और छन्द लाखों की संख्या में राजस्थान के नगरों, कस्बों एव गाँवों में बिखरे

पड़े हुए हैं। इनके प्रकाशन से एक ओर साहित्यकारों को राजस्थानी साहित्य का परिचय मिल सकेगा, तो दूसरी ओर इतिहास सम्बन्धी घटनाओं पर भी प्रकाश पड़ेगा। साहित्य-संस्थान राजस्थान में पहली संस्था है, जो शोध-खोज के क्षेत्र में नियमित काम करती चली आरही है।

इस प्रकार के संग्रह अब तक कई निकाले जासकते थे; किन्तु साधन सुविधाओं के अभाव में साहित्य-संस्थान विवश था। इस वर्ष प्राचीन राजस्थानी साहित्य और लोक साहित्य के प्रकाशनार्थ भारत सरकार के शिक्षा-विकास सचिवालय ने साहित्य-संस्थान के लिये कृपा कर ५७,०००) सत्तावन हजार रुपयों की योजना स्वीकार की है। इसी योजना के अन्तर्गत प्रस्तुत पुस्तक का भी प्रकाशन कार्य सम्पन्न हो सका है। ऐसे २ उपयोगी कार्यों को प्रकाश में लाने के कारण हमारी सरकार के गौरव में ही वृद्धि हुई है।

इस सहायता को दिलाने में राजस्थान के मुख्य मन्त्री माननीय श्री मोहनलालजी सुखाड़िया और उनके शिक्षा सचिवालय के अधिकारियों का पूरा २ योग रहा है। इसके लिये हम उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं। साथ ही भारत सरकार के उपशिक्षा सलाहकार डा० डी० पी० शुक्ला, डा० मान तथा श्री सोहनसिंह एम. ए. (लन्दन) के भी अत्यन्त आभारी हैं, जिन्होंने सहायता की रकम शीघ्र और समय पर दिलवा दी। सच तो यह है कि उक्त महानुभावों की प्रेरणा और सहायता से ही यह रकम मिल सकी है और संस्थान अपने ग्रन्थों का प्रकाशन करवा सका है। भारत सरकार के राज्यशिक्षा मन्त्री डा० कालूलालजी श्रीमाली के प्रति किन शब्दों में कृतज्ञता प्रकट की जाय? यह तो उन्हीं का अपना कार्य है। उनके सुझाव और उनकी प्रेरणा से संस्थान के प्रत्येक कार्य में निरन्तर विकास और विस्तार होता रहा है और

भविष्य में भी होता ही रहेगा। इसी आशा और विश्वास के साथ हम उनका हृदय से आभार मानते हैं।

हमें विश्वास है कि हमारी भारत सरकार एवं राजस्थान सरकार इसी प्रकार साहित्य-संस्थान की प्रवृत्तियों के लिये सहायता एवं सहयोग देकर हमारे उत्साह को बढाती रहेंगी, जिससे इस महान् देश की सांस्कृतिक प्राणभूत प्रवृत्तियों के द्वारा राष्ट्रीय चिर स्थायी कार्य किये जासकें।

हम उन सब सज्जनों और विद्वानों के भी आभारी हैं, जिन्होंने इस कार्य के संकलन, सम्पादन और संशोधन में सहयोग एवं सहायता दी है।

विनीत	विनीत
मोहनलाल व्यास शास्त्री	भगवतीलाल भट्ट
मंत्री	अध्यक्ष
साहित्य-संस्थान	साहित्य-संस्थान

सम्पादकीय—

किसी राजस्थानी कवि ने ठीक ही कहा है:—

"बड़ा कहे सो पाधरी, अव्यंगा हो व्यंग।"

अर्थात् प्रसिद्धि पाया हुआ व्यक्ति चाहे तथ्य युक्त या तथ्य हीन जैसा भी कहदे वैसा लोग मान लेते हैं। उसी के अनुसार इतिहास-कारों ने अधिकतर शिला लेखों को ही मूल आधार माना है या उन्हीं से सम्बन्धित कुछ पुस्तकों तथा लोक चर्चाओं को काम में लिया है, जिससे लोक इतिहास को वहीं तक सीमित मानने लग गये हैं

कवियों द्वारा की गई रचनाओं की ओर इतिहास-कारों का विशेष ध्यान नहीं गया। यदि वे इस प्रकार की रचनाओं का संग्रह कर उन्हें समझ इतिहास लिखते तो इतिहास का और भी सुन्दर रूप बन जाता।

प्रशस्तियों में राजाओं के अतिरिक्त साधारण योद्धाओं पर प्रकाश कम ही पड़ा है, जिससे वीर होते हुए भी सामान्य व्यक्ति का चरित्र लुप्त प्राय है। किन्तु कवियों की लेखनी इस बात में राजाओं पर ही नहीं साधारण से साधारण राजपूत की वीरता पर भी प्रकाश डालती रही है। कवि हृदय उदार होता है, उसके सामने सम्राट् और साधारण व्यक्ति समान रूप में हैं, वह वीर, धीर, गुणज्ञ आदि का पारखी है। यह गुण चाहे सामान्य व्यक्ति में भी होगा, तो वह उसका सम्मान करेगा और यश-गान में भी अपनी तूलिका तोड़ देगा। यदि

उपरोक्त गुणों से वञ्चित रहा तो चाहे राजा भी क्यों न हो, वह उस को घृणा की दृष्टि से देखेगा। यदि किसी ने राजा होने के नाते उस पर कुछ लिखा भी तो वह अतिशयोक्ति पूर्ण कहा जावगा, किन्तु सामान्य व्यक्ति पर लिखी गई रचना अधिकतर सत्यता पर प्रकाश डालेगी।

इसी संग्रह में हम देखते हैं तो केवल ५-६ राजाओं पर ही लिखे गये पद्य मिलते हैं। अन्य सारा वर्णन राजपूतों पर ही हुआ है। राजाओं के वर्णन को इतिहास की कसौटी पर कसते हैं, तो खरे नहीं उतरते।

जैसे:—

कुमार अभयसिंह के वर्णन में कवि लिखता है कि अमरसिंह के आतङ्क से हरमायें उर्ध्वश्वास लेती हुई बगल में वस्त्राभरण की पेटियें लिये हुए भागने की इच्छा से इधर उधर देखती हुई बँदरी सी दिखाई दी—

"मंजूसड़ी लीधां बगला में,
हुरम हुलक बानरी हुई"।

यह सभव है कि अभयसिंह ने शाहजहाँपुर पर आक्रमण किया हो; किन्तु हरमाओं की ऐसी दशा होना सभव नहीं।

अजीतसिंह की प्रशंसा में लिखा गया है कि दिल्ली-तख्त पर किसी को स्थापित करना और च्युत करना है धीर अजीतसिंह! तेरे पर ही निर्भर है—

"दिल्ली री पातसाही तणी बहादर,
थाप उथप जिका हाथ थारे"॥

औरंगजेब के पुत्रों में राज्य के लिये फूट पड़ी हुई थी उस समय अजीतसिंह ने भी एक का पक्ष लिया हो यह संभव है किन्तु किसी को तख्त पर आसीन करने और किसी को च्युत करने की शक्ति अजीतसिंह ही रखते हों यह संभव नहीं अपितु अजीतसिंह जोधपुर छूट जाने से मारे २ भटकते रहे हैं।

महाराज जसवन्तसिंह [प्रथम] के लिये कवि लिखता है— गो, ब्राह्मण, देवता, तीर्थ, वेद, शास्त्र, जनेऊ, तिलक, तुलसी, ईश्वर-स्मरण, और हिन्दू—धर्म आदि हे मरुनरेश! आपके प्रताप से ही बने हुए हैं—

सुरह द्रुज देव तीरथ निगम सासतर,
जनेऊ तलक तुलसी नरंजण जाप।
राह हिन्दू धरम तणो सावत रहे,
प्रगट मुरधर धणी तणो परताप ॥

यह सत्य है कि महाराजा जसवन्तसिंह विद्वान और वीर अवश्य थे; किन्तु सब प्रकार से स्वतन्त्र नहीं थे। अतः हिन्दूधर्म रक्षक की छाप पूर्णतया उन पर नहीं फबती। यह शब्द मेवाड़ के राजवंश पर ही सत्यरूप से घटित होते रहे हैं।

महाराजा भीमसिंह के लिये लिखा गया है कि उसकी तलवार के सामने हिन्दू और यवन दोनों झुक गये—

"इक हूंत नमियो दोय राह"

भीमसिंह का इतना आतंक हो यह केवल असत्य कल्पना है।

महाराजा मानसिंह पर कहा गया है कि हे नरेश! तू तक्षक तुल्य है। तेरी ही भजाओं पर सारे हिन्दुस्तान का कार्य भार है—

"मानसिंघ ताखा थारा भुजा डंडां तणै माथे,
आखा हिन्दू थान वाला थटाणा आरँभ ।"

इस प्रकार सारे हिन्दुस्तान का भार मानसिंह की भुजाओं पर लादाजाना कैसे माना जा सकता है ?

आदि वर्णन ध्यान पूर्वक पढने से अतिशयोक्ति पूर्ण ही कहा जायगा, लेकिन मध्यम और सामान्य श्रेणी के राजपूतों का वर्णन विचार करने पर सत्य घटनाओं को लिए हुए प्रतीत होता है. जिन्होंने देश और स्वामि के लिये युद्ध में प्राण देकर मरु प्रदेश को कान्तिवान कर दिया—

"कोढणे जल चाटे नवकोटे
मोटे प्रदि सांमने मुवो"

वे अप्सराओं द्वारा भालस्थल पर तिलक लगवाकर जबरदस्ती विमानों में बिठालिये गये—

"तिलक कर निलाटां अपछरां ताणिया,
बरोबर विमाणा बीच बैठाणिया ।"

वे ही नहीं उनके पिता पितामह आदि भी युद्ध में काम आकर यश देवालय की रचना कर गये, उन पर उनके वंशजों ने मारे आकर ध्वजा चढा दी—

"पित पित्र पितामह पाधरि,
भ्रित देवल उतरिया मारि-मारी ॥
पैत्रे धज चाडीतां ऊपरि,
मुजि हरि जोत समाण समहरि" ॥

शत्रुओं पर वीरता प्रदर्शित करते हुए वे शक्ति को शोणित से तृप्त कर यश को यहाँ छोड़ मोक्ष प्राप्त कर गये—

"रँजाड़े श्रोण, वीरत्ती विमाणे सत्रां,
कीरत्ती रहाड़े मिले मुकत्ती कसंन"।

उन्होंने सबको अपनी वीरता से यह दृढ विश्वास दिला दिया कि उनके धराशायी होने पर ही जोधपुर राज्य पर आपत्ति आ सकती है—

"आलमों पाड़ियाँ पछे ऊथपे जोधाण।'

वाराह स्वरूप होकर वे प्रबल शत्रुओं को मार कर ही मारे गये—

"मरि मारियो घणे मार हथे,
मारू एकल आप मल॥"

इत्यादि पद्य युद्ध-वीर एवं मृत वीरों की अमर कहानी हैं जिससे हम कोरी कल्पना नहीं कह सकते।

इन रचनाओं के निर्माता नरहर दास बारहठ आदि प्रसिद्ध कवि हो गये हैं जिनका सम्मान राजाओं एवं बादशाओं की सभा में होता था। ऐसे व्यक्तियों ने राजपूत की वीरता पर मुग्ध हो निस्वार्थ रचनायें की हैं। इसी लिये विशेष मान्य हैं। ज्ञात होता है ये कवि वीरता के पुजारी थे। जिस व्यक्ति से इनका कोई सम्बन्ध नहीं होता फिर भी अगर वह वीर होता तो इनका हृदय उसी की ओर उमड़ पड़ता और इनकी लेखनी भी उन्हीं के चरित्र-चित्रण में चल पड़ती थी।

कहने का तात्पर्य यह है कि इसमें वर्णित पद्य साहित्यिक तो हैं ही किन्तु अधिकतर इतिहास संबंधी हैं जिनमें से बहुत सा वर्णन संभव है इतिहास-कारों की दृष्टि से ओमल रहा हो। अतः उन्हें चाहिये कि इसमें वर्णित पद्यों एवं ऐसी ही रचनाओं को पढ़कर इतिहास पर नया प्रकाश डालने का कष्ट करेंगे तो उनवीर पुरुषों को अमर कहानी के सम्पर्क से इतिहास नवीन रूप धारण कर और भी लोगों के लिये उपयोगी बन पड़ेगा।

विषय-सूची

गीत संख्या

———

प्राचीन राजस्थानी गीत

भाग १०

कुमार अमरसिंह (जोधपुर)

—: गीत१ :—

दलांनाथ आगल् दिलो वंस रो दीपयण,
रूर राई तना राउ राठौड़ ।
अमर वणियौं मधर धारियँ आतपत्र,
माल री तिलक रिणमाल हर मोड़ ॥ १ ॥

वडा ही वड़ा आचार दीपै विसवि,
वहे सबलां खलां खेति वागै ।
जग हथे वंधिये गजण रो जैत्र हथ,
जग हथां बंधयण विरद जागै ॥ २ ॥

सूर हर सूर सकबंध साहण समंद,
ताघि सामंद्र असमाण तोलै ।
अतग अण रैण अण भंग ऊँचा सिरौ,
वहल् खल् सार मैं छोल् बोले ॥ ३ ॥

घोख मद घोख जस तणा वादित्र घुरै,
जौंध सामंत मैं थाट जोपै ।
चमर ढलते त्रिपति अमिनमौ चोंड रज,
अमर मेघाडंब (र) सीसि ओपै ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ—राठौड़ राज वीर अमरसिंह दिल्लीश्वर के सेनापतियों का अग्रसर, अपने वंश का दीपक और राजाओं की शोभा है। छत्र धारण किए हुए यह मालदेव के वंशजों का तिलक और रणमल के वंशजों का सिरमौर सा भासित होता है ॥ १ ॥

यह गजसिंह का पुत्र अपने उच्च आचरण से पृथ्वी पर सुशोभित है। युद्ध छिड़ने पर बलवान शत्रुओं को यह पीछे हटा देता है। संसार के बाहु रूपी वीर इसके विजयी हाथों की वन्दना करते रहते हैं। इसीलिए इसके विरुद विश्व-वंदनीय हैं ॥ २ ॥

यह सूरसिंह का वंशज सूरसिंह के समान प्रसिद्ध योद्धा, मस्तानी एवं समुद्र के समान अश्वारोही सेना की थाह लेने वाला है। आकाश को उठाने जैसी इसमें शक्ति है, इसका अभंगपन अथाह और असीम है। उच्च वीरों में यह श्रेष्ठ है। विशेष शत्रु-समूह में इसके शस्त्र रक्तपात कर देते हैं ॥ ३ ॥

इस नूतन चूंडा के जोश भरे यश के नक्कारे बजते रहते हैं। वीर समूह में यह जोधा का वंशज मस्ती से भरा हुआ शोभा पाता है। इस नरेश का मस्तक हिलते हुए चमरों और मेघाडम्बर (छोटा छत्र) से सुशोभित रहता है ॥ ४ ॥

राठौड़ अमरसिंह आसकरणोत (कूंपावत)

-: गीत २ :-

बलि मरियाँ परा त्रिभंगा वाळै,
　　　　कलि चालै कालौ कहर।
वाधी धसै सु नह वैरी हरि,
　　　　औरि सजै बाहर अमर ॥ १ ॥

कसियै जरदि मरद नवकोटी,
चौरंगि चढियै अमर चडूं ।
ऊभौ जां बांमै आरावत,
परिहँस सु नहँ पुराणि पड़ै ॥ २ ॥

कर ऊभियै महेस कलोधर,
सबला सूं सूझै समर ।
धख लागौ खेडूं जां धूहड़,
हुवै न सुख घर वैर हर ॥ ३ ॥

जुध वालियां किसन जोधपुरा,
निहसै त्रंसि चाडियां नीर ।
जस देवल रचयां सुजड़ी जड़ि,
वढि ढाहै देवल वरवीर ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वीर अमर ! तू बलशाली होकर अन्य भयानक वीरों को भगा देता है, युद्ध-क्रीड़ा करते समय बाधायें ला देने वाला सदैसा दिखाई देता है । तू दूसरों की सहायता के लिए युद्ध में सजता रहता है। इसी कारण शत्रु अपने स्थानों पर नहीं बस पाते ॥

हे आशकर्ण के वंशज मरदाने वीर राठौड़ ! जब तू युद्ध के लिए कवच सजाता है, उस समय तेरा चौगुना संमान और विशेष प्रभुत्व स्थापित होता है। जब तू उनके पीछे पड़ जाता है, उस समय तो ईश्वर भी उनकी रक्षा नहीं कर पाता ।

हे महेशदास की कला को धारण करने वाले राठौड़ वीर ! तू हाथ उठाकर बलशाली शत्रुओं को युद्ध में समाप्त कर देता है और जिनके पीछे तू पड़ जाता है, वे शत्रु सुख की नींद नहीं ले पाते ।

हे राठौड़ वीर ! तूने किशनसिंह को युद्ध में समाप्त कर (या भगा कर) अपने वंश की कान्ति बढ़ा दी और कटारी मार कर देवालय रूपी (उन्नत) वनवीर को ढहा दिया (नष्ट कर दिया) तथा अपने देवालय रूपी यश की रचना की ।

राठौड़ अमरसिह (बांदनवाड़ा, अजमेर, के पुरुष)

—: गीत ३ :—

लोह विराजियां गज बोह लियंता,
मोह सुजस खटमांणी ।
सोहे तूझ तणे नवसँहसा,
सोहे मुख सामाणी ॥ १ ॥

हणिया उजवक बलख हींचता,
साराहे दल सारा ।
ऊदावत तूवाला ऊपर,
वणिया धार विहारां ॥ २ ॥

पाट घणी छत्रपति जोधपुरा,
घाट निराट घड़ाया ।
ऊजल वरण कुँदण मुख उपरां,
जोहर अमर जड़ाया ॥ ३ ॥

अर्थः—हे श्याम मह के वंशज ! तू यश का इच्छुक एवं उसे प्राप्त करने वाला है । तूने शमन्त्र गजारोही वीरों को नष्ट कर दिया (रण क्षेत्र में) तुम्हारे सुशोभित होते ही मरुदेशीय (राठौड़) वीर प्रसन्न मुख दिखलाई देते हैं।

हे ऊदा (उदयभानु के) वंशज ! तूने वज्जब पर आक्रमण करते समय अरबदेशीय (यवन) वीरों को नष्ट कर दिया, उसकी प्रशंसा सब सेनायें करती हैं। उस समय तेरे अंग भी तलवारों से क्षत-विक्षत हो गये।

हे जोधपुर के राजवंश में श्रेष्ठ कहाने वाले वीर अमरसिंह ! तेरा मुख उन घावों से ऐसा सुशोभित होता है मानो कुन्दन (सोलह-बार तपाये हुए सोने) में नग जड़ दिये हों।

राठोड़ अमरसिंह (निमाज)

—: गीत ४ :—

ओहीज चढे तारा दुरंग मुगल हणिया ओंहीज,
बिसर मिलियो ओहीज सबल बागां ।
करे मुजरो अमर निजर दोलत करो,
(यूं) तुलकमीर (कहे) पत साह आगां ॥ १ ॥

ओहीज खूटा झंडा मिलण कज आवियो,
बले बाजावियो जैत बाजा ।
कमरदीखांन यस ऊमह अरजां करे,
राखिया मुदीकर पसह राजा ॥ २ ॥

वसही ने खवांनी तणे मुँह ऊपरां,
दाहिणे दसत रा तमाचा दीध ।
साह आगल कहे ऊवरां साहरां,
कमँध री हकीकत जाहरां कीध ॥ ३ ॥

इता कर मूंन दरगाह विच आवियो,
राह दहुं वे सिरे नाम रहियो ।
कुसल सुत वाह वे—वाह हीमत करां,
किलमपत वाह वे—वाह कहियो ॥ ४ ॥

(रच०—कविया करणीदान)

अर्थः—तुजकमीर बादशाह से निवेदन करने लगा—जो अमरसिंह आप से सलाम कर रहा है, यह वही वीर है जिसने तारागढ़ (अजमेर) पर अधिकार किया, मुगलों को नष्ट किया और रणवाद्यों के बजने पर (युद्ध में) बुरी तरह से भिड़ा । अतः इस पर कृपा दृष्टि करिये ।

कमरदी खान (वजीर कमरुद्दीन) ने भी बादशाह से प्रार्थना की, कि यह (अमरसिंह) वही वीर है, जो झण्डा (पताका) फहराता हुआ लड़ने के लिये आया था एवं जिसने विजय दुन्दुभि बजवाई थी। अतः ऐसे राजवंशज को प्रसंन्न रखना चाहिये ।

बादशाह के उमरावों ने भी राठौड़ वीर की चर्चा करते हुए कहा, कि खान के मुँह पर दाहिने हाथ से तमाचा (थप्पड़) मारने वाला यही योद्धा है ।

हे कुशलसिंह के पुत्र! तेरे भुजबल को धन्य है क्योंकि जब तू (दुश्मन का) मृत करके हिन्दू और यवनों से भरे हुए शाही दरबार में पहुँचा, तब वहाँ तू श्रेष्ठ माना गया और तेरी भुजाओं की बादशाह ने भी प्रशंसा की।

कुमार अभयसिंह

(महाराजा जोधपुर अजीतसिंह का उत्तराधिकारी)

—: गीत ५ :—

दिल्ली सूं झंडा हुआ दिठाल,
थाह अमामा कमण थँमे।
सहर वसायौ हुतो साहजां,
अणभँग धमरोलियो अभे॥ १॥
असी कोस हूंता खड़ आयो,
गजण कलोधर कुँवर गुर।
लसकर मेले सहर लूटियो,
मोह फाटां साहजां—पुर॥ २॥
तण अजमाल हूंत डरपंती,
पतसाहां त्रिय चीत पड़ी।
दुगचा आलमाल कर बैठी,
खड़े पाय हुय तड़ाखड़ी॥ ३॥

धरती मांहि मचाणो धूंखल,
किधर रखेगी माल कह।
बाप करे बेटा बोहतेरा,
बेटो खेटा करे वह ॥ ४ ॥
लाल को बिच माल लुकावे,
जवन जनाने जुई जुई।
मंजूसड़ी लीधां बगला में,
हुरम हुलक वानरी हुई ॥ ५ ॥

(र०—अज्ञात)

अर्थ—जब अभयसिंह की सेना के फहराते हुए झण्डे दिल्लीश्वर को दिखाई दिये, तब उस अपार सैन्य समूह को रोकने का साहस किसी में नहीं दिखाई दिया। उस अभंगवीर (अभयसिंह) ने तो शाहजहां द्वारा बसाये गये नगर को तोड़ फोड़ ही दिया।

गजसिंह की कला को धारण करने वाले उस युवराज शिरोमणि (अभयसिंह) ने अस्सी कोस-दूरी से चल कर एवं सुबह होते २ सैन्य प्रयाण करा कर शाहजहांपुर[1] को लूट लिया।

अजीतसिंह के उस वीर पुत्र से डरती हुई मुगलबेगमें चौंक पड़ी और वस्त्र द्रव्यादि उठा कर पैदल ही चलने को उद्यत होगईं।

यह देख कर कोई कहने लगा—हे स्त्रियों ! तुम इस माल को छिपा कर कहां रखोगी ? देखती नहीं—चारों ओर युद्ध छिड़ा हुआ है।

---

१ टिप्पणीः—शाहजहां (बाद) पुर दिल्ली से मिला हुआ है। अजीतसिंह ने दिल्ली पर भी आक्रमण किया था। सम्भवतः कुमार अभयसिंह ने उसी समय वहां लूटमार मचाई हो।

वीर (अभयसिंह) का पिता (अजीतसिंह) जिस तरह विशेष संतति वाला कहा गया, उसी प्रकार यह वीर भी विशेष युद्ध कर्ता है।"

फिर भी वे यवन-स्त्रियां आदि जवाहरात एवं मालायें इधर उधर छिपाने लगीं और पेटियां बगल में उठाये उमांसें लेती हुई, भयभीत होकर इधर उधर झांकती हुई बन्दरियों-सी दिखाई देने लगीं।

महाराजा अजीतसिंह (जोधपुर)

—: गीत ६ :—

अजा वाह हीमत तणा लीजिये उचारण,
राजरी बात दस देस रीधा।
कैद मझ किया पतसाह झाले करां,
कैद था जिका पतसाह कीधा ॥ १ ॥
आंट चढ जोम वैरां लियण ऊफणै,
तैज कंज प्रवाड़ा वणे ताजा।
ए किया पकड़ सुलतांण जस आज रैं,
रोकियां किया सुलताण राजा ॥ २ ॥
लगस घर जोम वैरां लियण लूंबियो,
खेड़ारे खला मोटा विरद खाट।
बांह्यूं ग्रेह हजरत दिया वेड़िया,
किता हजरत किया वेड़ियां काट ॥ ३ ॥
वाहजी वाह मुरघर तणा वाहरू,
जेरिया खाग हाले अजेरा।

ओल् में भला आलम—पता आंणिया,
　　किया आलम-पता ओल् केरा ॥ ४ ॥
प्रथी कुमया मया तणी पूगी परख,
　　नरांपत ऊनथां घणा नाथे ।
आलमां साह सिर छातर ऊथोलिया,
　　मेलियां गरीबां तणे माथे ॥ ५ ॥
रीज वेसाणजे तखत एकां रिधू,
　　तखत सूं खीज हेकां उतारै ।
दिली री पातसाही तणी बहादर,
　　थाप ऊथप जिका हाथ थारै ॥ ६ ॥

(रच० अज्ञात)

अर्थः—हे अजीतसिंह ! आपके साहस को धन्य है। आपकी बात पर सब कोई प्रसन्न होते हैं। आपने कई बादशाहों को तो कैद मुक्त कर बादशाह बना दिया और कइयों को पकड़ कर कैद कर दिया।

हे महाराजा ! आप हठ पूर्वक प्रतिशोध लेने के लिये अपना प्रताप फैलाते रहते हो, जिससे आपकी ख्याति कमल के समान शोभा पाती है। जिस प्रकार आपने बादशाह को पकड़ कर यश प्राप्त किया उसी प्रकार बन्धन में पड़े हुए को बादशाह बना कर ख्याति प्राप्त की।

हे राठौड़ नरेश्वर ! आपने प्रतिशोध भावना से शत्रुओं के पीछे पड़ सौभिमान महायश प्राप्त कर लिया। आपने हाथ पकड़ कर बादशाह के बेड़ियां डालदी और जो बन्धन में थे उन्हें बन्धन मुक्त कर बादशाह बना दिया।

हे मरुधरा के रक्षक! आपने खड्गाघात करके श्रीमन्तों को बरबाद कर दिया। शाहों को तो आपने बन्धन में डाल दिया और जो बन्धन में थे, उन्हें मुक्त कर बादशाह बना दिया।

हे नरेश्वर! संसार, आपकी सुदृष्टि एवं कुदृष्टि का परिचय पा चुका। क्योंकि आपने नहीं नथने योग्य (अवश) को नाथ दिया है (काबू में कर लिया है)। आपने बादशाह के मस्तक से छत्र उतार कर गरीबों के मस्तक पर रख दिया।

हे वीर! आप प्रसन्न होकर एक को तख्त पर बिठा देते हैं और रुष्ट होकर दूसरे को तख्त से उतार देते हैं। इस लिये कहना पड़ता है कि दिल्ली की बादशाहत पर किसी को स्थापित अथवा उससे च्युत करदेना आप ही के हाथों में है।

राठौड़ नरेश अजीतसिंह (जोधपुर)

—: गीत ७ —

नरां पियारी पियारी सुरां आसुरां पियारी नागां,
प्यारी रिखां जखां गणां गंध्रवां प्रवीत।
धुतारी कुंआरी नारी सदारी ठगारी धरा,
तिका तांबापत्रां पातां समापी अजीत॥ १॥
दाढ धारी वाराह भ्रुगुट्ट धारी सेस देवा,
दूही राजा प्रथू कामधेनू ज्यूं दुभाल।
मानधाता ऊपड़ी न हाथां वेण धुंधमार,
मेदनी सुपातां तिका अवी दूजै माल॥ २॥
कैरवां न मांगी दीधी पांडवां दिली, कीधी,
चापड़े भिड़ाया जे दिखाया चाला चीत।

रेणा कंस खपायो थपायो उग्रसेण राजा,
जिका रेण रीज देणो जसारो अजीत ॥ ३ ॥
त्रिलोकरे नाथ हाथ ओडली धरती तिका,
पाचियां धरतीं थियो वेराट रे रूप।
केकई छुडायो राम धरती भरत काज,
(इला तिका पातवां दी अजमाल भूप) ॥ ४ ॥
राजा बली राजा अवतारां में परसराम,
अवतरे जोधा घरे आजां तीजी उचार।
और चोथी आगाहटां पातां देणहार एहो,
देवां नरां नागां निको अवन्नी दातार ॥ ५ ॥

(रच०—द्वारिकादास दधवाड़िया)

अर्थः—हे अजीतसिंह! नर, असुर, सुर, नाग, ऋषि, यक्ष, गण और गन्धर्वों तक को प्यारी लगने वाली एवं पवित्र कौमारी पृथ्वी, जो बड़ी धूर्त और ठगिनी है, को तू ताम्रपत्र (सनदें) लिख कर कवियों को दान में देता है।

हे दूसरे ही मालदेव! जिस पृथ्वी को वाराह ने दाढ़ पर और शेष नाग ने मस्तक पर धारण किया, राजा पृथु ने जिसे बुरी तरह धेनु रूप में दुहा, मान्धाता, वेणु, धुंधुमार जिसे नहीं उठा सके, उसे तूने कवियों को दान में दे दिया।

हे जसवन्तसिंह के पुत्र अजीतसिंह! जिस दिल्ली (इन्द्रप्रस्त) को पाण्डवों ने बसाया, फिर भी कौरवों ने पाण्डवों को भू-भाग नहीं दिया, दोनों पक्ष खुले मैदान में जुट पड़े और इच्छा-पूर्वक

युद्ध किया। इसी पृथ्वी के लिए कंस मारा गया और उग्रसेन पुनः राज्य पर स्थापित हुआ। उस पृथ्वी को कवियों के लिए दान देने वाला तू ही है।

विराट रूप त्रिलोक पति पृथ्वी के लिए हाथ फैलाने के कारण वामन रूप हुए। अपने पुत्र भरत को पृथ्वी दिलाने के कारण कैकेयी ने राम को वनवास दिया। (हे अजीतसिंह) ऐसी उस पृथ्वी को कवियों को दान में देता है।

हे नरेश्वर! तेरे जैसा या तो बली राजा या अवतार धारी परशुराम (जिसने पृथ्वी को क्षत्रिय रहित कर राजाओं का भू-भाग ब्राह्मणों को दिया) ही हुआ, तीसरा जोधा के वंश में तू हुआ। तेरे समान चौथा उदार पीढ़ियों तक उपभोग में आने वाली भूमि,दान में देने वाला न तो देवताओं में,, मनुष्यों और नागों में ही हुआ है।

राठोड़ अर्जुनसिंह (गोपालदासोत, ऊहड़)

—: गीत ८ :—

पह चाड देश छल मीर पलटती,
कुलवट ते पूछियौ किसौ।
इहतौ जिसौ जनम लग ऊहड़,
उरजन म्रित सांपनौ इसौ ॥ १ ॥
धरियै अधणि आप तण धृहड़,
मिळियौ सारे निभै मन।

निहसै खसै ऊससै निग्रहि,
वंछतौ ताइ जूड़ियो विघन ॥ २ ॥
पाल् तणौ अजुवालण परियां,
घट त्रूटै आवाहे धाव।
मिलियौ दिनि धवल राउ मारू,
पह प्रीणतो तिसौ परिजात ॥ ३ ॥
जिम जैमाल अभिनमौ जैमल,
हालियै दलिदल् थंभ हुवौ।
कोढणै जल् चाढै नव कौटै,
मोटै ग्रवि सांपनै मुवौ ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—सैन्य समूह के पलटने पर देश-रक्षा के लिये राजा ने जब चढाई की, तब वंश स्वभाव के अनुसार क्या पूछना था। हे उहड़वंशी अर्जुनसिंह! जन्म से ही जैसी तेरी रुचि थी वैसी ही मृत्यु तू ने जोश में आकर (युद्ध में) प्राप्त की।

हे धूहड़ (राठौड़)! तू ने (अपनी भुजाओं पर) युद्ध भार ग्रहण कर निर्भयता पूर्वक तलवारों से तलवार मिलाई एवं शत्रुओं से संघर्ष करता हुआ तू नष्ट हुआ। (वास्तव में) मृत्यु के लिये जैसा विघ्न प्रद समय तुझे चाहिये था, वैसा ही मिला।

हे पाला (गोपालदास) के पुत्र राठौड़! अपने पूर्वजों की ख्याति को उज्वल (पवित्र) सिद्ध करने के लिये तू शरीर के टुकड़े २ हो जाने

पर भी शस्त्राघात करता रहा। (वास्तव में जैसा तूने चाहा था वैसा ही तुझे मृत्यु का सुदिन प्राप्त हुआ।

हे नूतन जयमल ! दिल्ली की सेना जब (युद्ध में) बढ़ी, तब तू स्तंभ स्वरूप (अडिग) हो गया और मरुदेश, जो कान्ति हीन होने वाला था, उसे कांतियुक्त करते हुए, अच्छे दिन में तूने मृत्यु प्राप्त की।

राठौड़ ईसरदास (कल्याण दासोत)

—: गीत ६ :—

मिलैं आछचैं भेछक वधे वीर हाक डाक वजि,
पेखें रंभरथ ढोपा वरमाल पांखि।
आवजैं अपार वार वीसमी नीसांण वाजै,
ईसरा अभंग नाथ ऊपरा आरांखि ॥ १ ॥
पड़े सार भार पूर आहुड़ै है थाह एकां,
मिलैं सुरां ताल काल कौतिग मैं कांम।
ग्रह ग्रहै तूर आगि ऊझलैं मिलै अपासि,
सोहे कलाऊत भायैं एकडी संग्राम ॥ २ ॥
धड़धड़ै धोम सूर वड़वड़ै चड़े धारि,
हड़हड़ै रंभ वाहै वरमाल हाथि।
मड़ां गजां मांजै भूरी वीरंयौ वीराध वीर,
मलौ मलौ भाखै मांग मिड़ते भाराथि ॥ ३ ॥
पारालै निजोड़ि धड़ां पड़े खरां खंवि पूरि,
जोध जुध जैतवंत हुवे पिता जेम।

अवरी वरेअ संग राठौड़ आरोहे रथे,
अभिनमो रायांमाल जोति मिले एम ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ:—अभंग वीर ईश्वरदास पर जब विषम रूप से (भीषण) नक्कारे बजवाते हुए शत्रु चढ़ आये और वार होने लगे, तब वह वीर (ईश्वरदास) युद्धोत्सव मनाता हुआ भिड़ गया जिससे वीर-हुँकार होने लगी, नक्कारों पर डंके पड़ने लगे एवं वरमालायें लेकर अप्सरायें विमानों को युद्ध की ओर बढ़ाने लगीं।

जब अकेले उस कल्ला के पुत्र (या वंशज) पर समूचे युद्ध का भार आ पड़ा, तब उसके द्वारा युद्ध छिड़ते ही अपार शस्त्र झड़ी होने लगी, अश्वारोहि वीर जुटने लगे, युद्ध देखने के लिये देवता एकत्रित होने लगे, एवं ताली बजाता हुआ स्वयं यमराज मृत्यु का खेल रचने लगा। साथ ही तुरही बजने लगी तथा वीर उछल २ कर आकाश को छूने लगे।

युद्ध-भूमि धड़धड़ाने लगी गर्जना करते हुए वीर खड्गधाराओं का सामना करने लगे, हँसती हुई अप्सरायें वरमाला वीरों के गले में डालने लगीं। इस प्रकार वीर-शिरोमणि युवक वीर (ईश्वरदास) योद्धाओं एवं हाथियों को नष्ट करने लगा, जिसे देखकर सूर्य भी उसकी प्रशंसा करने लगा।

उस जोधा के वंशज जो दूसरे ही रायमल तुल्य था, ने तलवार से तलवार मिलाकर युद्ध क्षेत्र को शवों से पाट दिया (इस प्रकार) वह राठौड़ वीर अपने पिता के सदृश विजयी कहाता हुआ कुमारी अप्सरा के साथ विमान में बैठ कर ईश्वर की ज्योति में जा मिला।

राठौड़ ईश्वरदास (कल्याण दासौत तथा रायमलोत)

—: गीत १० :—

वैर विभाड़िजै वड मौजां अविजै,
कुल उद्योत कहावे।
ईसर वडिम तूझ ईखंतां,
इनि पह मीढ न आवै ॥ १ ॥
सबलां खलां नामिजै समहरि,
कवि सबलां दन कीजै।
कुल अजुवाल गंगेव कलोघर,
दूजा मीढ न दीजै ॥ २ ॥
पूजण रेण चाचर निज पांणे,
वड हथ आंकण वारां।
समवड़ तूझ कल्याण समोभ्रम,
केम हुवे अनिकारां ॥ ३ ॥
भुज पूजै पतसाह महा मड़,
गुण नवखंडे गाए।
खिति मांणै महबति खेडेचा,
ऐं खत्र खाग पसाए ॥ ४ ॥

(रच०-अज्ञात)

अर्थ:—हे ईश्वरदास ! तू शत्रुओं का नाशक और विशेष दानी है, इसीलिए तू वंश का सूर्य कहा जाता है। तुझे देखते हुए दूसरे राजा तेरी समता नहीं कर सकते।

हे गांगा की कला को धारण करने और कुल को उज्वल करने वाले वीर ! तू युद्ध में बलवान शत्रुओं को झुका देता और दान देकर कवियों को भाग्यशाली बना देता है। यह देखते हुए अन्य नरेश तेरी तुलना नहीं कर सकते।

हे कल्याणदास की भ्रान्ति देने वाले वीर ! तू अपने हाथों से कवियों की पूजा कर उनके मस्तक पर तिलक किया करता है, मानों तू अपने लम्बे हाथों से उन्हें आँकता (अंकित सा कर देता है)। अतः अन्य कृपाण धारी तेरी समता किस प्रकार कर सकते हैं।

हे महान वीर खेड़ेचा (राठौड) ! तेरी भुजाओं की बादशाह भी पूजा करता है। नवों खण्डों में तेरा गुण गान होता रहता है और तू क्षत्रियत्व के साथ तलवार के बलपर प्रेम पूर्वक पृथ्वी का उपभोग करता रहता है।

चांदावत राठौड़ उदयसिंह, नरसिंह और लखधीर

—: गीत ११ :—

उदैसिंघ नरसिंघ लखधीर खड़े आवतां,
बींद बणिया ग्रहै नगरा बावतां।
रेवतां वोरतां वाहतां रावतां,
चाढिगो मेड़ते नीर चांदावतां ॥ १ ॥
बेठ तोपां घरर थरर चहुँवो भला,
झाट पड़ केमरां साट भरलक झलां।
खाट खड़ ढालडां टूक ऊछल खला,
बाज गरकाव कीधा समर बांथलां ॥ २ ॥

धज त्रिलँद घोरिया स्यामध्रम धारियां,
कूरमां तणा दल बीच अहँकारियां।
वाहतां साहतां वोसरा मारियां,
अखाड़े छुडायो धूर तरवारियां ॥ ३ ॥
गाघरे पाखरां फाटि पड़िया गरे,
केमरां कंचत्र जरद टुकड़ा करे।
वोदणी झिलम रूकां झपट वूतरे,
बीदंणी कूरमां तणी कमधां वरे ॥ ४ ॥
जेहड़ी टकोरा टूक पाड़े जुवा,
चूड़ि कट हाथलां धार श्रोणी चुवा।
दुधारा कटारां पहड़े गहणा दुवा,
हेत करि पोढ़िया लत्थ बाथे हुवा ॥ ५ ॥
बिजारा भावसी तणा वाखाणिया,
जोसरा वीटिया च्यार चक जांणिया।
तिलक कर निलाटा अपछरा ताणिया,
वरोवर बिमाणा बीच बेठाणिया ॥ ६ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—शत्रुओं को आते हुए देखकर उदयसिंह, नरसिंह एवं लखधीर नामक तीनों चांदावत राठौड़ों ने युद्धार्थ नक्कारे बजवाये तथा दुलहे बनकर (युद्ध में) घोड़ों को बढाते हुए रावत-पदधारी वीरों को काट २ कर फेंकने लगे। (इस प्रकार उन्होंने मेड़ते दुर्ग को कांति-युक्त कर दिया।

जब सिंह-सदृश वीरों ने युद्ध में घोड़े बढ़ाये तब तोपों की गड़गड़ाहट से चारों ओर की पृथ्वी फट कर नीचे की ओर धसने लगी, धनुष से बाण छूटने लगे और टकरा २ कर ज्वालायें छाने लगी तथा खड़खड़ाती हुई दुश्मनों की ढालें टूक २ होने लगी।

स्वामी धर्म परायण वे वीर अपने ऊर्ध्वकाय घोड़ों को कछवाही सेना पर साभिमान बढ़ाने लगे और धनुष को खींच २ कर बाण-वर्षा करते हुए, खड्ग-प्रहारों से युद्ध भूमि में चिनगारियां बिखेरने लगे।

लहँगे रूपी पाग्गरें फटकर गले में पड़ गई, बाणों द्वारा कंचुकी रूपी कवच के टुकड़े २ होगये, तलवारों के प्रहारों से साड़ीरूपी शिरस्त्राण खिसक पडे। इस प्रकार उन राठौड़ वीरों ने कछवाही सेना रूपी दुलहिन का वरण (काबू में) किया।

धनुष-टंकार ही युद्ध में जेहरी (नूपुर आदि का) शब्द बन गई, रक्तरंजित हाथ चूड़ियों से सुशोभित (मेंहदी-रँगे) हाथ बनगये, दूधारी तलवारों एवं कटारियों के घाव अंग-भूषण बन गये। ऐसी दुलहिन रूपी सेना के साथ वे (राठौड़) वीर गले में हाथ डालकर रणशय्या पर सो गये।

(इस प्रकार) उन बीजा एवं भावसिंह के (राठौड़) वीरों का यशगान होने लगा, जोश से भरे हुए उनवीरों की प्रसिद्धि संसार में फैल गई और अप्सरायें उनके ललाट पर तिलक कर एवं अपनेर विमानों में बिठलाकर उन्हें स्वर्ग को ले चली।

राठौड़ कूंपा (जयमलोत, बालावत)

—: गीत १२ :—

वडा सूर सुदतार वडवार विरदां वहण,
मेलवण ताल कलि चाल मारू।
कुल तिलक तूझ सरिखा सुहड़ कूंपक्रन,
सदा लग अरधिया वडिम सारू ॥ १ ॥

मुहीयड़ दलां दल मुहरि दन मंडयण,
धार मर आवरण खत्र धौड़।
उजलां कमल वीदाहरा अतुलबल,
मांनिजैं तुजिसा न्याय कुल मौड़ ॥ २ ॥

सार सफरि म वधैं कीध जग साखियो,
भिड़णि अरि थाट जैं नाट मानै।
सुभट पें जेवहा सदा आखाड सिध,
कमँध भुज पूजिजै अचड़ काजैं ॥ ३ ॥

पाखि खत्रवट जतू मलां चढियौ प्रमति,
धरा रखपाल रणतालि दल धीर।
वंस रा तिलक जैमाल रा वीर वर,
निवड़ मड़ निवे आया रहैं नीर ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे राठौड़ वीर कूंपा! तू बड़ा शूर वीर और दानी है। तदनु रूपतेरे विरुद भी बड़े हैं। युद्धकर्ताओं की पंक्तियद्ध सेना से

एक तू ही हाथ मिलाने वाला है। हे कुल-तिलक योद्धा! तुझ से योद्धाओं के कारण ही पूर्व पुरुष (पुरुषा) वंदनीय हैं।

हे वीदा के वंशज (या पौत्र)! सामना होने पर तू सूर्य-सदृश (प्रचण्ड) होकर हरावल में बढ़ता हुआ एवं तलवार द्वारा विपक्षि वीरों से लड़ता हुआ अपने पवित्र बृहद् वंश-क्षत्रियत्व का पालन करता रहता है, जिससे तेरा मुख निष्कलंक दिखाई देता है। इसलिये तुझे 'वंश का सिरमौड़' कहा जाना उचित है।

हे रणदक्ष राठौड़ वीर! (युद्ध में) जब शस्त्राघात होने लगते हैं, तब तू पीठ नहीं दिखाता है, (प्रत्युत) आगे बढ़ता ही रहता है। इस बात का साक्षी समस्त संसार है। (वास्तव में) तेरे भिड़ने पर शत्रु-समूह भाग जाता है और आपत्ति के समय तुझ जैसे वीरों के बाहु ही पूजे जाते हैं।

हे जयमाल के पुत्र (या वंशज)! तू कुल का तिलक एवं श्रेष्ठ वीर है। तूने अपनी भुजाओं पर क्षात्र व्रत की शोभा भली भाँति धारण कर रखी है। हे धीर वीर! तू धरा-रक्षक एवं सेना में अविराम शस्त्राघात करने वाला है। युद्ध भूमि में तेरे प्रवेश करने पर दुश्मन झुक जाते तथा समाप्त हो जाते हैं। युद्ध में तेरे सम्मिलित होने पर ही वीरों की मुख कांति बनी रहती है।

ठाकुर केशरीसिंह राठौड़ (रायपुर)

—: गीत १३ :—

सेस ईस वंस[१] जेहरी एराक भू चेपखां सुरा,
मेथा पूर तता मे तेहरी घड़ा मोड़।

---

१ टिप्पणीः— वंशभास्कर एवं डिंगल कोश के अनुसार 'सूत (लोमहर्षण)' राजा-पृथु के यज्ञ-समय उत्पन्न हुआ, जिसे कच्छ देश दिया गया। उसकी शादी बृहद्बल मागधी पुत्री 'थत्री' से हुई। जिसके वरदान से उसके 'उग्रश्रवा' नामक पुत्र हुआ जिससे चारणों की १२० शाखायें प्रादुर्भूत हुई।

रूपगां पै घात तीठ देहरी न रखे रोला,
रेणुवां है मड़ां एहां केहरी राठोड़ ॥१॥

चारू वांणी पाखोपंथा मोड़णा केवीयां चमू,
ग्रंथा-सिव चल थांभा तोड़णा गयद।
आसरेस तेज में जीपणा जंगां रखे एहां,
भीपणा अहासां पहां भाखरेस नंद ॥२॥

आवां अगां परोकी अरेहां परां छठी जागे,
सूम देव ऐगकी अछेहां सरां खांण।
दखां गुणां देहां किलां स्याम काज भंजे देहा,
मांणु तुरां भीच ऐहां रखे ऊदा माण ॥३॥

रचा ग्रंथां ऊगतां, तरंतां आचा पाथ रूपी,
वाचा वार ऐना चाँपरीये जंगां वाघ।
आचां कन्नू परखे सुपातां तूगं भड़ां आछा,
अरखे न काचा मान सांचां करे आघ ॥४॥

(रच०-ढधवाडिया पोकरराम)

अर्थः—शेषनाग एवं शिवद्वारा समुत्पन्न (चारण) वंश के बुद्धिमान् तथा पद्यरचना करने वाले (कवियो) को वेगवान एवं चंचल तथा कूदते रहने वाले घोड़ों को तथा मातृपितृ पक्ष से वीर एवं तीन र पेरा दी हुई पंक्तिबद्ध गज-सेना को भगा देने वाला तथा युद्ध में शरीर की परवाह न करने वाले योद्धाओं को राठौड़ केसरीसिंह (अपने यहाँ) रखता है।

श्रेष्ठ वाणी वाले एवं ग्रन्थों के ज्ञाता तथा अच्छे अक्षरों से रचना करने वाले कवि, पानी को तैरकर पार करने वाले चंचल एवं तेज (आशुगामी) घोड़ों और शत्रु-सेना को परास्त करने वाले एवं युद्ध में स्तम्भ की तरह अडिग हाथिया को नष्ट करने वाले तथा विजय पाने वाले राजवंशी क्षत्रिय,, भाखरसिंह के पुत्र के यहाँ रहते हैं।

प्रश्न का उत्तर शीघ्र देने वाले. (कविता की मस्ती में) मस्त रहने वाले एवं गुणदक्ष कवियों को. हरिण एव पक्षधारियों के समान कहे जाने वाले तथा देव अंशी एवं टक्कर से दुर्गों को ढहा देने वाले घोड़ों को और दूसरों के हित युद्धार्थ तत्पर रहने वाले असख्य वीरों को नष्ट करने वाले तथा स्वामिहित खून बहाने वाले भयानक योद्धाओं को, उदावत राठौड़ों का सूर्य (केशरीसिंह) अपने पास रखता है।

उक्ति पूर्वक ग्रन्थ रचना करने वाले एवं वचन रूपी पैने बाणों से वार करने वाले कवियों का, (रण-सिन्धु को) तैर जाने वाले चंचल घोड़ों का और अर्जुन के समान धनुर्धारी तथा युद्ध-समय में सिंह-सदृश साहसी वीरों का, अपने हाथों से पोषण करता हुआ राठौड़ वीर (केशरीसिंह) सम्मान करता रहता है। इसके यहाँ अयोग्य सम्मानित नहीं होते।

राठौड़ कर्णसिंह, साहिब खान और अरसिंह (चांपावत)

—: गीत १४ :—

दल मिलिया सबल भटकियो दमंगल,
खग वाजे लूंबिया खल।
जुध दैठा चांपा चाढै जल,
बहसे कमधज सहस बल॥१॥

चाहै अङ्कर धारियां चौसर,
सुर संकर जोवै समर।
क्रन, साहिब, अखई, वाहै कर,
मोपतिकां थोभियां भर ॥२॥

रिणि सबदी अडै भुज रिणिमल,
मुह रावत त्रिद आप मल।
हाले हमल नेठ है हीसल,
पाल — हरा जूटै अपल ॥३॥

पित पौत्र पितामह पाधरि,
प्रित देवल ऊतरिया मरि मरि।
पोत्रे घत्र चाढीतां ऊपरि,
सुत्रि हरि जोति समाणा समहरि ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—जब सबल सेनाओं के भिड़जाने पर युद्ध छिड़गया, मह्‌गायात करते हुए शत्रु उलट पड़े, तब हजारों गुना अधिक बल प्रदर्शित करते हुए अपने वंश को उज्वल करने के लिये चांपावत राठौड़, युद्ध में उतरे

जब कर्णसी, साहिब खान और अखयसिंह ने कराघात कर शत्रुओं को रोक दिया, तब (वरण की) इच्छा करती हुई अप्सराओं ने हाथों में मालायें उठाली, एवं देवता और शंकर युद्ध देखनेलगे।

रणमल के समान पाला के वंशज जो अतुलनीय वीर एवं रावत पदधारियों के मुखिया थे, जब (युद्ध में) हुंकार करते हुए भिड़गये, तब

समस्त वीर ठिठक गये और धकेले जाने पर भी घोड़े कठिनाई से आगे बढ़ने लगे।

पूर्वजों के समान ही पिता और पितामह ने मर कर (यश) मन्दिर की रचना और पौत्र ने मरकर उस (यश-मन्दिर) पर ध्वजा फहरादी। इस प्रकार तीनों (पिता पितामह और पौत्र) ईश्वर की ज्योति में लीन होगये।

राठौड़ किसनसिंह

—: गीत १५ :—

सजे साकुरां पाखरां नरां काभरा करारां साथे,
बाजतां नगारां वधे वीरां धमे वीर।
मारकां हजारां सीस धावियो अटेल मारू,
सूर रे आखरां वेल आवियो सधीर ॥१॥

विवाणा अच्छरां सोक वाजी हाक डाक वीरां,
वीटियो सधीरां घणा धारिया विसंन।
पाणी अड़े पाछरे कृपाण वांणा गैठ पड़े,
केवाणा कृपाणा वागो जुवांणां किसंन ॥२॥

कोरड़ा लोहड़ा तूटे विछूटे छक्कड़ा कड़ा,
नीधकां नीवाड़ा भड़ां हाकले नरीठ।
धूघ ओजड़ां झड़ां धजवड़ां भांजि घड़ा,
राठोड़ां ओनाड़ां लागो वागो विने गैठ ॥३॥

भभक्के अरायां नालां गड़क्के अग्राजा भोम,
फड़क्के फीफरां श्रोण अड़क्के फूणाल ।
घड़क्के कायरां नरां वड़क्के सनाह धारां,
लड़क्के चाचरां सूरां कड़क्के लंकाल ॥४॥

गेमरां हेमरां नरां पाड़ि गाड़ि दीध गरा,
दूसरा केहरी खिले खेचरां दुवाह ।
सो सरा खजरा करां वुरा परा फूटै सेल,
ऊपरा अच्छरां करे रिरुखरा उछाह ॥५॥

रुंडां भखरुंडां करे नवेखंडां नाम राखे,
अफाले त्रितंडां गुणां कोमंडा अग्राज ।
चापड़े उडंडां झंडा भुडडां पराई चाडां,
वीच जाडां थंडां रहे आडा खंडां वाज ॥६॥

सामंतां पाखत्ती लीधां राठोड़ सहत्ती सती,
पेखे पारवत्ती करें आरत्ती प्रसंन ।
सकत्ती रँजाड़े श्रोण वीरत्ती विभाड़े सत्रां,
कीरत्ती रहाड़े मिले मुकत्ती कसंन ॥७॥

(रच०–अज्ञात)

अर्थः—सूरसिंह के पुत्र वीर राठौड़ ने घोड़ों एवं साथियों को सजाकर करारे (भयंकर) शत्रु कायरों — पर नक्कारे बजवाये और (रणक्षेत्र) में, आगे बढ़कर उन्हें मंतम कर दिया। (इस प्रकार) धीरवीर वह अड़ाकू योद्धा, हजारों हत्यारे वीरों पर आक्रमण कर अन्त में स्वपक्ष—वीरों का सहायक बना।

वीर किशनसिंह के खड्गाघात एवं शराघात शुरू होने पर अप्सराओं के विमानों की आवाज होने लगी, उछलकूद करते हुए विरों की हुँकार होने लगी, विष्णु (भगवान) का स्मरण कर बहुत से साथी वीर उसके आसपास होगये और अड़ाकू पक्ष के वीरों (विपक्षियों) पर कमानों से तीरों की झड़ी करने लगे।

जब राठौड़ों एवं अनम्र शत्रुओं में लगातार शस्त्रवर्षा होने लगी, तब हाथों मे लिये हुए चाबुक एवं शस्त्र टूटने लगे, उत्साह में छके हुए वीरों के कवच की कड़ियां टूटने लगी, शत्रुओं से निधड़क निपटते हुए वीर ललकारने लगे एवं भयानक खड्गाघातों से सेना विनष्ट होने लगी।

सिंह सदृश वीर किशनसिंह ने जब ललकार की तब तोपों तथा तुपकों से अग्नि-ज्वाला फैलने लगी एवं उनकी गर्जना से पृथ्वी प्रतिध्वनित होने लगी, फेफड़े फड़ फड़ाने लगे, पृथ्वी शेषनाग के फणों से जा टकराई, कायर कांपने लगे, खड्गाघातों से बक्तर टूटने लगे तथा वीरां के मस्तक कट २ कर लुड़कने लगे।

दूसरेही केशरीसिंह तुल्य वीर (किशनसिंह) ने (युद्ध में) अपने दोनों हाथों को चलाकर आकाश मार्ग पर चलने वाले देवता आदि को प्रसन्न कर दिया, एवं हाथी-घोड़ों तथा शत्रुवीरों को काट कर युद्ध भूमि को पाट दिया। जब बाण, खंजर एवं भाले वीरों के हृदय को विदीर्ण करने लगे, तब यह देखकर अप्सरायें विवाह संबंधी भोज्योत्सव की तैयारी करने लगी।

अन्य की सहायता के लिये चढ़ाई करने वाले उस वीर (किशनसिंह) ने शत्रुओं के शरीर क्षत विक्षत कर नव खंड भू तल पर अपना नाम अमर किया। उसने धनुष की टंकार करते हुए हाथियों को घायल

कर लड़खड़ाते कर दिये (इस प्रकार) वह अपने बाहुबल से खुले मैदान में पताकायें फहराता हुआ सैन्य समूह में प्रवेश कर खड्गाघातों से धराशायी हो गया।

अपने साथियों एवं सहगामिनी के सहित जब वह वीर कैलाश में पहुँचा, तब प्रसन्न होती हुई पार्वती ने उसकी आरती उतारी। (इस प्रकार) उसने वीरतापूर्वक शत्रुओं का नाश कर रणचंडी को शोणित से तृप्त कर दिया। वह वीर किशनसिंह कीर्ति को यहीं छोड़, मुक्ति को प्राप्त कर गया।

राठोड़ कला (रायमलोत)

—:-गीत १६ :—

थल चढ बोलियाँ पतसाह बदीतो,
माण मंडोवर राव मलीतो।
कलो मलो रजपूत कहीतो,
जिण अवतार लगें जस जीतो॥ १॥

प्रथम दल आरँभ पतसाहे
साह दरीखँम बीड़ो साहे।
बदिया वयण जिके निरवाहे,
गढ सिवियांण कले पड़ गाहे॥ २॥

थल गह गरट तलहटी थांणो,
राव अग्राज करे रीसांणो।
कड़वा वयण कहे कलियाणो,
सिर पड़िये देसूं सिवियांणो॥ ३॥

वे माभी वे तखत वडालै,
विहद हुआ वे वेध विचालै।
ऊदा राव दुरंग ऊधालै,
रायमलोत दुरंग रखवालै ॥ ४ ॥

जिम रावल दूदौ जेसांणै,
निहसै चूंड राव नागांणै।
सातल सोम मुआ सिवियाणै,
कीनो मरण जिसो कलियाणै ॥ ५ ॥

पावेगढ़ जूभार पताई,
सक जैमल चीतोड़ सवाई।
लाखवटा सिर मांड लड़ाई,
वाघ हरो लड़ियो मरदाई ॥ ६ ॥

धरपत कान्ह रटै जालंधर,
थाट विडार हमीर रणथंभर।
अंग तिण लाज अणखला ऊपर,
कलियो जूझ मूओ गज केहर ॥ ७ ॥

अचल तिलोको सींगण आगे,
जुध जोधपुर मुआ छल जागे।
लाज तिकां सिर अवर लागे,
खेड़ नरेस्वर विढियौ खागे ॥ ८ ॥

हाथी सहर मांण-", हाथालो,
कान मागरण माभी कालो।

आधू सजन मुवो अड़सालो,
सुणियो जेम फलो सु पखालो ॥ ९ ॥

विढ भोजराज मुओ वीकांणे,
पाट उरजण जेम प्रमांणे ।
वरसलपुर खां माल वखांणे,
साको जेम कला सिवियांणे ॥१०॥

न रहो महियल पाल निरोहे,
सोहियौ सोम मंडोवर सोहे ।
लोद्रवे मांण मुओ चढलोहे,
सिर सिवियांण कला अत सोहे ॥११॥

भूपतसींघ जिसां भूपालां,
मांच गहां चढ ऊपर मालां ।
राव आव कहतो रवतालां,
फलक्रन रहे मुहे करमालां ॥१२॥

सूजा हरो ऊँचियै साबल,
चावो मुओ अणखल निह बल ।
दीठे काल कोपिये अरिदल,
चढिया गिरे जूजुआ चल चल ॥१३॥

मरण कला मंडोवर मावे,
चावो रावां बोल चढावे ।

रवि सस हर लग नाम रहावे,
इन्द्र सभा मझ बैठो आवे ॥१४॥

(रच० राठौड़ पृथ्वीराज, बीकानेर)

अर्थः—वीर कल्ला श्रेष्ठ क्षत्रिय कहे जाने योग्य था। (सचमुच) उसका जन्म विजय प्राप्त कर यश-प्राप्ति के लिये ही हुआ। अपने बल पर उसने बादशाह को प्रत्युत्तर देते हुए कहा, कि मैं युद्ध में मँडोवर राजवंश की इज्जत बनायी रखूंगा।

सैन्य प्रयाण से पूर्व ही वीर कल्ला ने शाही दरबार में युद्धार्थ प्रतिज्ञा कर तांबूल (बीड़) उठा लिया और अपने वचन को निभाता हुआ, सिवाने के दुर्ग पर लड़ता हुआ धराशायी हो गया।

सिवाने दुर्ग के नीचे घेरा डाल कर क्रुद्ध जोधपुर नरेश ने थान नियुक्त कर दिया और गर्जना की। यह देखकर वीर कल्ला ने कटु-वचनों में कहा, कि मेरा मस्तक कटने पर ही तुम लोग सिवाना दुर्ग प्राप्त कर सकोगे।

जब दोनों बड़े २ तख्तों (दिल्ली एवं जोधपुर) के स्वामियों तथा उनके प्रमुख वीरों ने मिल कर अपार युद्ध छेड़ दिया, तब (शाही बल पर) मरुनरेश उदा (उदयसिंह), सिवाना दुर्ग को ले लेना चाहता था; परन्तु रायमलोत (रायमल का वंशज) यह वीर कल्ला उस दुर्ग का रक्षक बन गया (जीतेजी दुर्ग को हाथों से नहीं जाने दिया)।

जिस प्रकार जैसलमेर पर रावल दूदा, नागौर पर चौंडा, इसी सिवाने दुर्ग पर सातल और साम—

पावागढ़ पर पता, चित्तौड़ दुर्ग पर जयमल लाखोटा की बारी (चित्तौड़ दुर्ग स्थित एक स्थान) पर वाघा का यश धारी पौत्र (या वंशज)—

जालंधर (जालौर) पर नरेश्वर कान्हड़दे, रणथंभोर पर शत्रु-समूह का नाशक हम्मीर—

जोधपुर के रक्षार्थ अचला, तलोखा एवं मींगण नामक वीर—

हाथी शहर पर महाबाहु (अथवा 'हाथाला' प्रान्त, सिरोही का) भाण, गागरोन पर प्रमत्त वीरों का मुखिया कान्हा, आबू पर अड़सी का पुत्र (या अड़ाकू वीर)—

बीकानेर पर अर्जुनसिंह के सिंहासन को सुशोभित करने वाला भोजराज, बरमलपुर (मारवाड़) पर खेमा—

महियल (मेवल, मेवात या अलवर प्रान्त) पर नरू (नरूके कछवाहों का पुरखा), मंडोवर पर मोम, लोद्रवा पर भाण तथा—

मांचेड़ी (मेवात) स्थान के 'ऊपरमाल' प्रांत पर चढ़ाई कर युद्ध करते हुए नरेश-शिरोमणि भूपतसिंह मारे गये, उसी प्रकार—

सूजा का पौत्र (या वंशज) वीर कल्ला जो शत्रुरूपी हाथियो के लिये सिंह स्वरूप एवं कर्ण सदृश वीर था, भाला उठाये, शत्रुओं को यमस्वरूप दिखलाई देता, दुर्ग पर चढ़ते हुए शत्रुओं को विचलित एवं जहाँ तहाँ धराशायी करता, कुल-लज्जा को रखता, उन्नत मस्तक से आकाश को स्पर्श करता तथा रावत-पद-धारी वीरों को ललकारता हुआ सिवाना पर प्रसिद्ध युद्ध कर के दुर्ग को निजमस्तक समापत करता हुआ खड्गाघात द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ।

(इस प्रकार) उस मंडोवर राजवंशी वीर कल्लाने मस्ती के साथ मर कर ख्याति प्राप्त की तथा प्रसिद्धि पाकर अपने नाम को यावनूचन्द्र दिवाकर अमर करते हुए, विमान में बैठ इन्द्रसभा में स्थान पाया।

राठौड़ गोवर्धनसिंह (चाँदावत, कूंपावत)

—: गीत १७ :—

गढ़बंध सुछलि अणभंग गोवरधन,
घण दलसौं वाधियौ घणो।
कमलि घाव वणियौं नवकोटा,
टीकौ जुध मेलिया तणो ॥ १ ॥

सुह विहंडियौ भुजे राव मारू,
दुजड़ै मड़ा दाखतै देख।
चौरंगि चहुँदलां चांदाउत,
आगलि हुवा तणौ अविसेख ॥ २ ॥

असहां रिख अणियां में आखित,
होइ पेदां धुणि वीर हक।
असिमर अंक कलोधर ईसर,
तो सिरि सत्रवट चौ तिलक ॥ ३ ॥

मुह मांजिया तणा मौहेला,
मिली ते साखौ गयणि मिणी।
कुल आभरण अभिनमा कूंपा,
भू- मंडलि चाढियो मरणि ॥ ४ ॥

[रच०-अज्ञात]

अर्थ-हे अभंगवीर गोवर्धन सिंह राठौड़ ! तू वीर समूह का
रक्षक और विशेष सेना से सम्मानित है। तेरे मस्तक पर शस्त्र का
घाव ऐसी शोभा देता है, मानों युद्ध-तिलक तेरे भाल पर किया हो।

हे चाँदा के वंशज राठौड़ वीर ! जब तूने शत्रुवीरों को ललकार
कर अपने बाहुबल से उनके मुँह (सेना के अग्रभाग) को तोड़ दिया
तब चतुरंगिणी सेनाने तुझे चारगुना (अधिक) धन्यवाद दिया। (उस
समय ऐसा लगा मानो) उस चतुरंगिनी सेनाने तुझपर अभिषेक
किया हो।

हे ईश्वरदास की कला को धारण करनेवाले वीर ! युद्ध-
समय अश्वारोही वीर ही ऋषि, शस्त्रों की अणियों ही अक्षत, वीरों की
हुँकार ही वेदध्वनि और तेरे मस्तक पर लगाहुआ तलवार का (घाव)
ही तिलक बनगया (इस प्रकार) मानो यह तेरा अभिषेक किया गया है।

हे नूतन कूंपा ! तूने ही मोहिल वीरों के मुहाने को तोड़ दिया,
इसकी साक्षी सूर्य देता है। यही कारण है कि पृथ्वी के समस्त वीरों
में तू विशेष वीर मानागया है।

राठौड़ गोवर्धन (चाँदावत, माधवसिंहोत)

—: गीत १८ :—

ठ नायक जोध जोधहर दीपक,
ाह पूरित सह त्रिवि वड गात।
ग्रहिया चंदतणा गोवरधन,
छल मारी परियां कुल छात ॥ १ ॥

फटकां अखी ऊजलां कमधज,
मछर सपूरित निभै मण।
अणभँग सहज वडा आवरिया,
तणै वीर जिम सिंघ तण ॥ २ ॥

खत्रियां खत्री तिलक रेहेचों,
सहदन विधि असिमर सधर।
सु करे विरद धारिया सबला,
हरै दूद जिम राम हर ॥ ३ ॥

ग्रंथण खाग जोवतां वाडिम,
मेर प्रमाणि सुरधरा मौड़।
मयंक तणी गोवरधन महियलि,
राजै सोह सु तणि राठौड़ ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वीर गोवर्धन! तू सेना का स्वामी, जोधा के कुल का दीप एवं विशाल काय है। तू पूर्णतया सहनशील है। हे वंश के छत्ररूप वीर! तुममें यहां की रक्षा करने के स्वाभाविक वेही गुण (विद्यामान) हैं, जो तेरे पूर्वज चांदा में थे।

हे सिंघा के पुत्र! तू और वीरम का पुत्र दोनों ही एक समान वीर हो। सेनाओं के अग्रभाग में रहकर राठौड़ वंश में पवित्र कहेलाने वाले, प्रसन्न, निर्भीक, अभंग एवं पूर्वजों के उद्देश्यों की पूर्ति करने वाले तुम दोनों ही हो।

क्षत्रियों में श्रेष्ठ राठौड़ कुल-तिलक, सदा शस्त्रधारी एवं अपने हाथों से विरुद प्राप्त करने वाले हे रामसिंह के पौत्र (या वंशज) तथा दूदा के पौत्र (या वंशज)! तुम दोनों समान ही बलवान हो।

पावागढ़ पर पता, चित्तौड़ दुर्ग पर जयमल लाखोटा की बारी (चित्तौड़ दुर्ग स्थित एक स्थान) पर बाघा का यश धारी पौत्र (या वंशज)—

जालंधर (जालौर) पर नरेश्वर कान्हड़दे, रणथंभोर पर शत्रु-समूह का नाशक हम्मीर—

जोधपुर के रक्षार्थ अचला, तलोखा एवं मींगण नामक वीर—

हाथी शहर पर महाबाहु (अथवा 'हाथाला' प्रान्त, सिरोही का) भाण, गागरोन पर प्रमत्त वीरों का मुखिया कान्हा, आबू पर अड़सी का पुत्र (या अड़ाकू वीर)—

बीकानेर पर अर्जुनसिंह के सिंहासन को सुशोभित करने वाला भोजराज, वरसलपुर (मारवाड़) पर खेमा—

महियल (मेवल, मेवात या अलवर प्रान्त) पर नरू (नरूके कछवाहों का पुरखा), मंडोवर पर सोम, लोद्रवा पर भाण तथा—

मांचैड़ी (मेवात) स्थान के 'ऊपरमाल' प्रांत पर चढ़ाई कर युद्ध करते हुए नरेश-शिरोमणि भूपतसिंह मारे गये, उसी प्रकार—

सूजा का पौत्र (या वंशज) वीर कल्ला जो शत्रुरूपी हाथियों के लिये सिंह स्वरूप एवं कर्ण सदृश वीर था, भाला उठाये, शत्रुओं को यमस्वरूप दिखलाई देता, दुर्ग पर चढ़ते हुए शत्रुओं को विचलित एवं जहाँ तहाँ धराशायी करता, कुल-लज्जा को रखता, उन्नत मस्तक से आकाश को स्पर्श करता तथा रावत-पद-धारी वीरों को ललकारता हुआ सिवाना पर प्रसिद्ध युद्ध कर के दुर्ग को निजमस्तक समापत करता हुआ खड्गाघात द्वारा मृत्यु को प्राप्त हुआ।

(इस प्रकार) उस मंडोवर राजवंशी वीर कल्लाने मस्ती के साथ मर कर ख्याति प्राप्त की तथा प्रसिद्धि पाकर अपने नाम को यावत्चन्द्र दिवाकर अमर करते हुए, विमान में बैठ इन्द्रसभा में स्थान पाया।

राठौड़ गोवर्धनसिंह (चाँदावत, कूंपावत)

—: गीत १७ :—

गळबंध सुछलि अणभग गोवरधन,
पण दळसां वाधियो घणो।
कमलि पांत्र वणियां नवकोटा,
टीकौ जुध मेलिया तणो ॥ १ ॥

मुह विहंडियां भुजे राव मारू,
दुजड़ै मडा दाखतै देख।
चौरंगि चहुँदलां चांदाउत,
आगलि हुवा तणौ अविसेख ॥ २ ॥

असदां रिख अखियां में आखित,
होइ वेदां धुणि वीर हक।
असिमर अंक कलोधर ईसर,
तो सिरि रत्रवट चौ तिलक ॥ ३ ॥

मुह मांजिया तणा मौहेला,
मिली ते सारवी गयणि मिणी।
फुल आगरया अमिनमा कूंपा,
भू- मंडलि चाढियो भरणि ॥ ४ ॥

[रच०—अज्ञात]

अर्थः—हे अभंगवीर गोवर्धन सिंह राठौड़ ! तू वीर समूह का रक्षक और विशेष सेना से सम्मानित है। तेरे मस्तक पर शस्त्र का घाव ऐसी शोभा देता है, मानों युद्ध-तिलक तेरे भाल पर किया हो।

हे चॉदा के वंशज राठौड़ वीर ! जब तूने शत्रुवीरों को ललकार कर अपने बाहुबल से उनके मुँह (सेना के अग्रभाग) को तोड़ दिया तब चतुरंगिणी सेनाने तुझे चारगुना (अधिक) धन्यवाद दिया। (उस समय ऐसा लगा मानो) उस चतुरंगिनी सेनाने तुझपर अभिषेक किया हो।

हे ईश्वरदास की कला को धारण करनेवाले वीर ! युद्ध-समय अश्वारोही वीर ही ऋषि, शस्त्रों की अणियों ही अक्षत, वीरों की हुँकार ही वेदध्वनि और तेरे मस्तक पर लगाहुआ तलवार का (घाव) ही तिलक बनगया (इस प्रकार) मानो यह तेरा अभिषेक किया गया है।

हे नूतन कूंपा ! तूने ही मोहिल वीरों के मुहाने को तोड़ दिया, इसकी साक्षी सूर्य देता है। यही कारण है कि पृथ्वी के समस्त वीरों में तू विशेष वीर मानागया है।

राठौड़ गोवर्धन (चाँदावत, माधवसिंहोत)

—: गीत १८ :—

दळ नायक जोध जोधहर दीपक,
गह पूरित सह विधि वड गात।
ग्रहिया चंदतणा गोवरधन,
छल़ भारी परियां कुल़ छात ॥ १ ॥

कटकां अणी ऊजलां कमधज,
भछर सपूरित निभै मण।
अणभँग सहज वडा आवरिया,
तणै वीर जिम सिंघ तण ॥ २ ॥

खत्रियां खत्री तिलक खेड़ेचौ,
सहदन विधि असिमर सधर।
सु करे विरद धारिया सबला,
हरै दूद जिम राम हर ॥ ३ ॥

त्रंघण खाग जोवतां वाडिम,
मेर प्रमाणि मुरधरा मौड़।
मयंक तणी गोवरधन महियलि,
राजै सोह सु तणि राठौड़ ॥ ४ ॥

(रच०-अज्ञात)

अर्थः—हे वीर गोवर्धन! तू सेना का स्वामी, जोधा के कुल का दीप एवं विशाल काय है। तू पूर्णतया सहनशील है। हे वंश के छत्ररूप वीर! तुझमें बड़ों की रक्षा करने के स्वाभाविक वेही गुण (विद्यमान) हैं, जो तेरे पूर्वज चाँदा में थे।

हे सिंधा के पुत्र! तू और वीरम का पुत्र दोनों ही एक समान वीर हो। सेनाओं के अग्रभाग में रहकर राठौड़ वंश में पवित्र कहेजाने वाले, प्रमत्त, निर्भीक, अभंग एवं पूर्वजों के उद्देश्यों की पूर्ति करने वाले तुम दोनों ही हो।

क्षत्रियों में श्रेष्ठ राठौड़ कुल-तिलक, सदा शस्त्रधारी एवं अपने हाथों से विरुद प्राप्त करने वाले हे रामसिंह के पौत्र (या वंशज) तथा दूदा के पौत्र (या वंशज)! तुम दोनों समान ही बलवान हो।

हे राठौड़वीर गोवर्धन! तेरे द्वारा विशेष खड्गाघात होते देखकर और सुमेरु-सदृश उच्च स्वभाव वाला सोचकर कहना पड़ता कि तू मरु प्रदेश का सिर मौड़ है तथा ······ तेरे पूर्वज चांदा की छटा तेरे शरीर पर फबती है।

राठौड़ गोपालदास (कान्हौत, रायमलोत)

—: गीत १६ :—

वडा ताल मेलण करण काजि अचडां वधे,
जैतहथ जीपयण वरण रण जंग।
मारकौ दलां रखपाल गोपाल मल,
गज गहण डोहण दूमरौ गंग ॥१॥

कान्हरौ खैत्री गुरु अधणि आतम किये,
वधै मीछां हूँता विघन वेलां।
मिलियै कूंत कर वियौ कलियांण मल,
मिलै तां हुवै जमरांण मेलां ॥२॥

खैड़ पति खाटिया वडां विरदां खवे,
छरां रखपाल अजुवाल छाडा।
पडंते मार पाहाड़ ज वडा प्रचंड,
ओटवैं भुजाडँड नहंग आडा ॥३॥

किये साखी कमल राइमल कलोधर,
पट हयां डसणि करिमाल पूजौ।

देसि परदेसि दल सिंघा दीपै दलै,
दलां री थंभ रिणमाल दूजौ ॥४॥

(र०-अज्ञात)

अर्थ:—हे गोपालदास ! तू कार्य साधन के लिये युद्ध आगे बढ़कर तथा अडिग होकर शत्रुओं से हाथ मिलाता है । तेरे विजयी हाथ युद्ध में जयलक्ष्मी का वरण करवा देते हैं । तू शत्रु-संहारक बनकर अपनी सेना का रक्षक बनजाता है एवं गजसमूह को नष्ट करता हुआ, दूसरे ही गांगा के समान प्रतीत होता है ।

हे कान्हा के पुत्र (या वंशज) ! तू दूसरा ही कल्याणदास है । हे क्षत्रिय-गुरु ! तूने ही जोश में आकर आपत्ति के समय भयंकर शत्रुओं को नष्ट करदिया है । (युद्ध में) जब तूने अपने भाले को (दुश्मनों के) भालों से भिड़ाया, तब ऐसा दिखाई दिया मानों यमराज के यहां मेला लगगया हो ।

हे रेड़चे (राठौड़) वीर ! तेरे कंधों पर ही महा विरुद शोभा देते हैं । तू ही सैन्यपंक्ति का रक्षक, छाटा वंश को उज्वल करने वाला एवं प्रचंड पर्वतकाय होकर युद्ध भार आजाने पर आकाश को अपनी भुजाओं पर थाम लेने वाला है ।

हे रायमल की कला को धारण करने वाले वीर ! तू दूसरा ही रणमाल है । तेरे द्वारा काटे गये शत्रु-मस्तक ही तेरी वीरता के साक्षिरूप हैं । पटाधारी हाथियों को नष्ट करने वाला तेरा खड्ग पूजा जाता है । देश विदेश की सेनाओं में तू शत्रुओं का दलन करता हुआ सिंह के समान सुशोभित होता है । अपनी सेना के लिये तू स्तंभ के समान है ।

महाराजा गजसिंह (जोधपुर)

—: गीत २० :—

मुहरि मांडिजै काजि दिगविजय मंडोवरो,
धुर धमल सिरै परिगह धरीसै ।
दिलीवै सोच गजसाह मुख देखिजै,
दिलीवै हरिख तोइ गजण दीसै ॥१॥

करण भारथ महा महाराजा कमँध,
मिलै मड़साम सिर गयणि मेलै ।
चींत सुरितांण आगलि वियो चौंड रज,
चैन सुरितांण तिम न को चेलै ॥२॥

आम थोभै भुजे मालहर आमरख,
वधे आधक छत्रां विसोवा वीस ।
दुचित दिलेस तद खलां मांथे दुगम,
सुचित तद परठिजै ऊवरां सीस ॥३॥

भिड़ै पतसाह सैं हाथि जिण भांजियां,
वडिम विधि जास दरिगह विराजै ।
इसे विरदे लिये श्रो जगत ऊपरां,
सूर सुत तपै खत्रवाट साजै ॥४॥

(रच०—बारहठ नरहरदास)

अर्थ:—हे मण्डोवर-स्वामी गजसिंह! दिग्विजय के लिये जब तू अपने वृषभ-सदृश वीरों को साथ लेकर हरावल में हो जाता है, तब

देसि परदेसि दल सिंघ दीपै दलै,
दलां री थंभ रिणमाल दूजौ ॥४॥

(रच०–अज्ञात)

अर्थ:—हे गोपालदास ! तू कार्य साधन के लिये युद्ध आगे बढ़कर तथा अडिग होकर शत्रुओं से हाथ मिलाता है । तेरे विजयी हाथ युद्ध में जयलक्ष्मी का वरण करवा देते हैं । तू शत्रु-संहारक बनकर अपनी सेना का रक्षक बनजाता है एवं गजसमूह को नष्ट करता हुआ, दूसरे ही गांगा के समान प्रतीत होता है ।

हे कान्हा के पुत्र (या वंशज) ! तू दूसरा ही कल्याणदास है । हे क्षत्रिय-गुरु ! तूने ही जोश में आकर आपत्ति के समय भयंकर शत्रुओं को नष्ट करदिया है । (युद्ध में) जब तूने अपने भाले को (दुश्मनों के) भालों से भिड़ाया, तब ऐसा दिखाई दिया मानों यमराज के यहां मेला लगगया हो ।

हे खेड़ेचे (राठौड़) वीर ! तेरे कंधों पर ही महा विरुद शोभा देते हैं । तू ही सैन्यपंक्ति का रक्षक, दादा वंश को उज्वल करने वाला एवं प्रचंड पर्वतश्रय होकर युद्ध भार आजाने पर आकाश को अपनी भुजाओं पर थाम लेने वाला है ।

हे रायमल की कला को धारण करने वाले वीर ! तू दूसरा ही रणमाल है । तेरे द्वारा काटे गये शत्रु-मस्तक ही तेरी वीरता के साक्षिरूप हैं । पटाधारी हाथियों को नष्ट करने वाला तेरा खड्ग पूजा जाता है । देश विदेश की सेनाओं में तू शत्रुओं का दलन करता हुआ सिंह के समान सुशोभित होता है । अपनी सेना के लिये तू स्तंभ के समान है ।

महाराजा गजसिंह (जोधपुर)

—: गीत २० :—

मुहरि मांडिजै काजि दिगविजय मंडोवरो,
धुर धमल सिरै परिगह धरीसै।
दिलीवै सोच गजसाह मुख देखिजै,
दिलीवै हरिख तोड़ गजण दीसै ॥१॥

करण भारथ महा महाराजा कमँध,
मिलै भड़ताम सिर गयणि मेल्है।
चींत सुरितांण आगलि वियौ चौंड रज,
चैन सुरितांण तिम न को चेल्है ॥२॥

आभ थोभै भुजे मालहर आभरण,
वधे आधक छत्रां विसोवा वीस।
दुचित दिलेस तद खलां मांथे दुगम,
सुचित तद परठिजै ऊवरां सीस ॥३॥

भिड़ै पतसाह सैं हाथि जिण भांजियां,
वडिम विधि जास दरिगह विराजै।
इसे विरदे लिये ओ जगत ऊपरां,
सूर सुत तपै खत्रवाट साजै ॥४॥

(रच०—बारहठ नरहरदास)

अर्थः—हे मण्डोवर-स्वामी गजसिंह ! दिग्विजय के लिये जब तू अपने धवल-सदृश वीरों को साथ लेकर हरावल में हो जाता है, तब

दिल्लीश्वर (बादशाह) को ('तुम्हारे प्रतिकूल होने पर सल्तनत नष्ट कर देने की) चिंता एवं (तुम्हारे अनुकूल रहने पर सल्तनत बनी रहने का) हर्ष साथ २ होना रहता है।

हे राठौड़ राजा ! तू दूसरा ही चौडा है। जब दुश्मनों से तेरा सामना होता है, तब तू महायुद्ध करने के लिये अपना मस्तक आकाश से लगा देता है (उथल-पुथल मचा देता है)। यह देख कर बादशाह दुःख और सुख दोनों का अनुभव करता है।

हे मालदेव के कुल-भूषण ! तू (युद्ध के समय) जब आकाश को भुजाओं पर उठाकर (उथल-पुथल मचाकर) शत्रुओं पर भयानक आक्रमण करता है, तब तेरे पराक्रम को देख कर बादशाह उदास हो जाता है और शाही उमरावों का साथ देते हुए तुझे देख कर प्रसन्नचित्त दिखाई देता है।

हे सूरसिंह के पुत्र ! तूने एक ओर तो प्रतिकूल होकर बादशाह का नाशकर दिया और (दूसरी ओर) जब तू अनुकूल हो गया तब, उसकी सभा की शोभा बढ़ादी। (इस प्रकार) तू संसार में शाह-नाशक एवं शाह-रक्षक दोनों विरुदों से सुशोभित होकर शासन करता है।

महाराजा गजसिंह (जोधपुर)

—: गीत २१ :—

वडै कामि दलथंभ गजसाह दल तोड़ वदै,
छात्रपति कमँध ए बोल छाजै।
रूकि पातसाह. दल लाज ते राखिजै ॥
भिड़े पतसाह रिखि तिहिज भांजै ॥१॥

सेन सुरतांण सुरताण सम चढ़ि सबल,
अमर मंडल लगे एह आगाज।
ऊवेलण परिभवण तणों छल आवगो॥
ऊजला खत्री थारे भुजे आज॥२॥

अमिनमां चौंड रज भुजां बल ए रसी,
छात्रपति ग्रहे ग्रह हूँत छोड़े।
असपती तणा दल पूठि तो ऊवरै,
मुंहि चढ़े असपती तुहींज मोड़े॥३॥

सूर सुत सुछलि दिल्लेस सक बंध सह,
तेज ग्रवि दलां हूँ पैज तांणी।
खाग भल खांद वल छांडि खिसिया खलें,
वधैं जैकार सुर अखिल वांणी॥४॥

(रच०—बारहठ नरहरदास)

अर्थः—हे राठौड़ वीर गजसिंह! सेनायें तुझे अपना स्तंभ मानती हैं और तुझे यह पद शोभा भी देता है, क्योंकि तेरी तलवार शाही सेना की लज्जा रखने वाली है तथा तुझ से जो बादशाह भिड़ता है, उसे तू युद्ध में नष्ट कर देता है।

हे नरेश्वर! शाही सेना तथा स्वयं बादशाह भी चढ़ आवे, तो (तू पाछे नहीं हट सकता)। इस बात की साक्षी स्वयं देवगण भी आकाश से देते हैं कि यह वीर (और तो सब ठीक, परन्तु) स्वर्ग को भी बचाने का साहस रखता है। (वास्तव में) आज तेरी भुजाओं के बल पर ही क्षत्रियत्व उज्ज्वल है।

हे नूतन चूंडा के समान वीर ! यह पृथ्वी तेरी भुजाओं के सहारे ही टिकी है। तू कई छत्र धारियों को बन्धन में लेने अथवा मुक्त करने की शक्ति रखता है। शाही सेना तेरे पक्ष में आकर तो बच जाती है; परन्तु जो बादशाह तेरा सामना करता है, उसे कदम पीछे देना ही पड़ता है।

हे सूरसिंह के सुपुत्र ! तू अपना प्रताप फैलाता हुआ प्रसिद्ध युद्ध करने वाले दिल्लीश्वर (बादशाह) का रक्षक बनकर जो तूने प्रतिज्ञा की और अपनी तलवार की ज्वाला से विपक्षी यवनों को भय भीत कर भगा दिया, उसे देख कर सारा संसार एवं देवता तेरी जय २ कार करने लगे।

राठौड़ गदाधर (जैमालोत, गिरधरदासोत)

—: गीत २२ :—

वधे वीर हाकां धाकां धौम गैणाग धूवे,
पवंग जुधि मेलियौ दलां पहिलै।
आप छलं बाप छल सांमि छल आवरां,
गदाधर खड़ग धर झूझि गहिलै ॥२॥

दल आदेसियौ वीर गुर दूसिरौ,
जैत्र हथ वाहतो करग रण जंगि।
वीर रस हाकले वाज रिणि वावलै,
भेलियौ आवळै थाटि अणभंगि ॥२॥

सावलां हूलां पाड़ि रीढ मातै समरि,
ऊजलै कमलि मुहरि अपारां।

त्रिजड़ हथि नांखियां सँग गिरधर तणे,
सूर तन पूरियें सीसि सारां ॥३॥
मेला भचाड़ि जैमाल केसव सुवणि,
जुड़े पह काजि पित आगली जेम।
बधे वाखांण त्यां भड़ां न्याए बडा,
ऊवरें जीवतां स्यंभ होइ एम ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ:—जिस समय वीरों की हुँकार और शोर गुल से आकाश प्रतिध्वनित होने लगा, उस समय वीर गदाधर ने अपने घोड़े को सब से आगे बढ़ाया और वह रणोन्मत्त अपनी, अपने पिता तथा अपने स्वामी की रक्षा करता हुआ खड्ग ग्रहण कर विपक्षियों से भिड़ पड़ा।

सेना ने उसे द्वितीय वीर- गुरु मानकर उसका अभिनन्दन किया। उस युद्ध के मतवाले वीररस से छके हुए वीर ने घोड़ा बढ़ाया और अपने विजयी हाथों द्वारा तलवार चलाकर अभंग सैन्य समूह में बुरी तरह उथल पुथल मचा दी।

उस रणोन्मत्त, मनेजमुख और हठीले वीर गिरिधर के पुत्र ने शत्रु-सेना के अग्रभाग के वीरों के अंगों में भाला भोंक कर उन्हें गिरा दिया और घोड़े को सवेग बढ़ाकर प्रत्येक शत्रु के मस्तक पर खड्गाघात किया।

वह अपने पूर्वज जयमल और केशव को श्रेष्ठ वीर सिद्ध करता हुआ, अपने स्वामी के लिए उसके आगे आकर इस प्रकार लड़ा, जैसे पिता के लिए पुत्र। जो वीर मारे जाते हैं, उनकी प्रशंसा तो न्याय संगत ही है, परन्तु (गदाधर की तरह) इस प्रकार युद्ध कर बचने वाले वीर भी शुंभ दानव से कम नहीं कहेगए।

राठौड़ गोकुल (सुजानसिंहोत, ईसरोत)

—: गीत २३ :—

गहि चाढे मंडोवर जंगल,
सांकड़ां मिलियां दल सब्बल।
समहर कुल लज्या पै संकल,
गमां गमां वीटाणो गोकल ॥१॥

केवी मुहर पूठि सुर-कामिणि,
जड़ाधार पासे व्योह जोगिणि।
मोहिया सुर अँतरीख गयण-मिणि,
राड़जादो सोहियौ महारिणि ॥२॥

त्रूटै सार घुरै त्रंबालां,
विचि आउधां वहे वरमालां।
रैखग रुधिर काजि रखवालां,
सुजाउत ऊपरै सचाला ॥३॥

वप लोहां अपछर हँस वरियो,
सिव माला खेचरि रत सरियौ।
आसाहरौ सुरां आवरियौ,
सुजि हरि जोति मुगति सांचरियौ ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—जिस समय मंडोवर की घनी सेना ने जंगल प्रदेश पर चढ़ाई की, उस समय बलवान वीर एक दूसरे के पास आकर भिड़ने लगे।

उस समय वीर गोकुल जिसके पैरों में कुल-लज्जा की शृंखलाएँ पड़ी हुई थीं, शनैः शनैः घेरा जाने लगा।

उस राज वंशज वीर के सामने शत्रु, पीठ पर देवी और समीप ही शिव तथा योगिनियाँ थीं। अंतरिक्ष में सूर्य और देवता मुग्ध हो रहे थे। इस प्रकार वह वीर महारण में सुशोभित हुआ।

उस सूजा के वंशज के भिड़ने पर शस्त्र टूटने लगे, नक्कारे बजने लगे और शस्त्रों के चलने के साथ ही उस वीर पर अप्सराओं द्वारा वरमालाएँ फेंकी जाने लगीं तथा रक्तपात के इच्छुक, जिनके अंगों पर रेखाएँ हैं, ऐसे गिद्धादि पक्षी रक्षक रूप में ऊपर भ्रमण करने लगे।

उस आश (आसकर्ण के वंशज) के रक्त-रंजित शरीर का हँसती हुई अप्सरा ने वरण किया। शिव को मुण्डमाला एवं खेचरि आदि डाइनियों को रक्त प्राप्त हुआ। इस प्रकार देवताओं द्वारा वह सम्मानित हुआ और हरि-ज्योति में विलीन होकर मोक्ष को प्राप्त हुआ।

गिरधरदास (केशवदासोत)

—: गीत २५ :—

विघन वार गिरधर सधर वाधियँ वीर रसि,

पह सुद्धलि सगह आलम गँपँखै।

मरण मंगल जिमाँ जाणियाँ मोट मनि,

लाख खल सबल तिलमात लेखै ॥१॥

ऊससे नहँग लग भार सिरि आवियौ,
वाहतो कमँध जणि जण वखाणे।
अंत ऊछाह रिमराहि उर आणियौ,
जुडंतै वहल् दल् तूछ जांणे ॥२॥

हणे असुरांण तुड़ि तांण जैमल-हरै,
पाधरे पांण पिड़ि भुइ पचारै।
अमंगल काल् आणंद सम ईखियौ,
सेन दूमर सुगम कीध सारे ॥३॥

हुवौ रिण थंभ निय साथ विमुहै हुवै,
त्रिदस मंनव हूवा विखि तमासै।
सामि-ध्रम दाखि केसव तणो सांवलौ,
वरेगौ रंभ सुरलोक वासे ॥४॥

(रच०-अज्ञात)

युद्ध की आपत्ति आने पर वीर गिरिधर के अंग ने वीर रस की वृद्धि पाई, उस स्वामि-रक्षक वीर को उस समय सब देखने लगे। उस उदारमना ने मृत्यु को मंगलप्रद और लाखों बलवान शत्रुओं को तिल मात्र समझा।

युद्ध का भार सिर पर आते ही उसने अपने मस्तक को आकाश से जा लगाया। उस को शस्त्राघात करते हुए देख कर प्रत्येक उस वीर की प्रशंसा करने लगा। शत्रुओं ने उसमें असीम उत्साह भर दिया। वह लड़ता हुआ महती सेना को तुच्छ समझने लगा।

जयमल के उस वंशज ने हाथ उठाकर यवनों के कवच तोड़ कर नष्ट कर दिए। और वह स्वयं शत्रुओं को ललकारता हुआ धराशायी होगया। उस वीर ने अमांगलिक समय को भी आनन्द प्रद और महती भयंकर सेना को भी साधारण समझा।

साथियों के पीठ बता देने पर भी वह युद्ध में स्तंभ स्वरूप होकर डटा रहा। इस कौतुक की ओर देवता और मनुष्यों के मन लग गए। इस प्रकार केशव का सिंह तुल्य पुत्र स्वामि धर्म को निभाता हुआ रंभा का वरण कर स्वर्ग में जा बसा।

राठौड़ चत्रभुज (नरहरदासोत, चाँपावत)

—: गीत २५ :—

चित मोटै जगत वखाणै चत्रभुज,
वैढुक धरीयै खत्री व्रति।
दादे जसौ गै-घड़ा डोहण,
पिता सरीखो विरद पति ॥१॥

सेन मनाह थींटियौ सफरिम,
सयल सपेखै करे सराह।
मांणा जिसो गज फौज भयंकर,
नरपालदे जिसौ नरनाह ॥२॥

ए सांमतां खांणि आगां लग,
इल उवचरै विसेखि इणि।
जेताउत सरिखा जग जैठी,
भाणाउत सरिखो भिड़णि ॥३॥

बाप तणे जु सरि अतुलि बल,
बाल धमल जूतो वहसि।
कलि वाळे रखवालौ कमधज,
जे सारै ऊजलौ जसि ॥४॥
(रच०—अज्ञात)

हे वीर चत्रभुज! सारा विश्व तेरे उच्च मन की प्रशंसा करता है। तूने शत्रु—संहार के लिए क्षात्र व्रत धारण किया है। अपने पितामह के समान तू गज-सेना का नायक और पिता के समान विरुदधारी है।

हे लड़ाकू वीर! सेना में कवच कसे हुए तुझे देखकर सब तेरी प्रशंसा करते हैं। तू भाणा के समान गज-सेना के लिए भयावना और नरपाल जैसा नरेश्वर है।

हे वीर! तेरा यह वंश पहिले से ही विशेष प्रसिद्ध है। तू जेता के समान संसार में बली और भाणा के समान भिड़ने वाला है।

हे राठौड़! तू अपने पिता के समान ही अतुल बली है और धवल-वृषभ तुल्य होकर कीर्तिरूपी रथ में जुत गया है। इस कलियुग में तू ही एकमात्र रक्षक है। इसीलिए तेरा यश उज्ज्वल है।

महाराजा जसवंतसिंह प्रथम; (जोधपुर)

—: गीत २६ :—

छिले सेन साहण समँद कमँध ऊपरि छत्रां,
ऊजला करे आरंभ अनिमंध।
पोकरणि पलटि गजबंध रा पाटपति,
बाँधियौ जोधपुर गळै छत्रबंध ॥१॥

बाजते नगारें कटक चाले विसम,
जैत्र हय खत्रियाँ इसौ रण जंग।
गढ़ांरा गात्र गलिया जसा गढ़पती,
गिरँद सिणगारियौ अभिनमा गंग ॥२॥

बाप जिम वडाही वडा वणिया बिरद,
सूरहर आमरण मर्दां सारू।
महाराजा जु तैं मांड कीधो विग्रह,
मंडोवर अंजसै राव मारू ॥३॥

खत्रीवट प्रगट करि जैत चाढी खगां,
कुल तिलक काढ़ियाँ कोट लियौ।
सपूताचार पतिसाह सनमानियौ,
वालतै पोकरण अंक वलियौ ॥४॥

(रच०—बारहठ नरहरदास)

अर्थः—हे महाराजा गजसिंह के ज्येष्ठ पुत्र! छत्रधारी वीर राठौड़! अश्वारोही सेना तुमपर टूट पड़ी, तब तूने अद्‌भुत युद्ध छेड़कर अपने यश को उज्ज्वल कर दिया और गये हुए पोकरण दुर्ग को जोधपुर के अधिकार में करा दिया।

हे दुर्गाधिप जसवंतसिंह! तू दूसरा ही गांगा है। तूने नक्कारे बजवाते हुए अपनी विषम सेना (युद्ध में) बढ़ाई और गढ़ाधिपों के गात्रों पर अधिकार कर अपने दुर्ग की शोभा बढ़ादी।

हे राठौड़ राज! तू सूरसिंह के वंशजों का शुरू से ही आभूषण स्वरूप है। तू अपने पिता के सदृश ही विरुदधारी है। हे महाराजा!

तूने मांडा को मद रहित करदिया (अभिमान चूर्ण कर दिया) है, मंडोवर राज्य को उसका गर्व है।

हे वंश-तिलक-वीर ! तूने राजपूती वट को प्रसिद्धि देते हुए जो विजय का भार अपनी भुजाओं पर लिया एवं गये हुए पोखरण दुर्ग के अधिकृत किया, उस कृत्य का सम्मान स्वयं बादशाह ने भी किया (वास्तव में) तेरा यह वीर-कर्तव्य निःसीम है।

राठौड़ नरेश जसवन्तसिंह प्रथम (जोधपुर)

—: गीत २७ :—

जग जेठी जोध जसा जोधपुरा, वड पह वाखाणे वखत,
तूं बारमे बरस ले खेड़े, तेरे साखां री तखत ॥१॥
वणियो जसा बारहे बरसे, मुरधर सो तो जोड़ मिले,
तो सारिखो हिंदुश्रो तुरके, भव छाते ताणिये निले ॥२॥
बालक थके लियो अतुली बल, नहपत नको प्रताप मणो,
सहित जोधपुरा सूर कलोधर, टीलो राव मालदे तणो ॥३॥
दलथँभ तणा दिलेसुर दीधी, जुड़ियो मुरधर सूर सक,
तो ऊगतो बांदियो तुरकां, आथमतो बांदे अरक ॥४॥

(रच०-अज्ञात)

अर्थः—हे जोधपुर के स्वामी जसवन्तसिंह ! तू संसार में बड़ा वीर माना जाता है और बड़े २ राजा तेरे शासन समय की प्रशंसा करते हैं। बारह वर्ष की आयु में ही तू खेड़ (मरु प्रदेश की प्राचीन राजधानी) का स्वामी हो तेरहों शाखा के राठौड़ों का तिलक स्वरूप कहलाया।

हे जसवन्तसिंह ! बारह वर्ष की आयु में तेरा और मरुप्रदेश का अच्छा सम्बन्ध स्थापित हुआ। तू मरुप्रदेश से और मरुप्रदेश तुझ से शोभा पाने लगा। तेरा जैसा शोभा युक्त छत्रधारी और वीर हिन्दू और यवनों में कोई दिखाई नहीं पड़ता।

हे सूरसिंह की कला को धारण करने वाले जोधपुर के स्वामी! तेरे प्रताप में किसी प्रकार की कमी नहीं। शैशवावस्था में ही तू अतुल बली हुआ, राव मालदेव के राज्य सिंहासन का तिलक तेरे ललाट पर किया गया।

हे नरेश ! मरु देश को तेरा शासन सूरसिंह के शासन-समय-सा ज्ञात हुआ और दिल्लीश्वर ने भी तुझे दल-थंभ (सेनाका स्तंभ) उपाधि से सुशोभित किया। सूर्यास्त समय चन्द्रमा की वन्दना करने वाले यवन भी तेरे जैसे उदय होते सूर्य की वन्दना करने लगे।

महाराजा जसवंतसिंह प्रथम, (जोधपुर)

—: गीत २८ :—

कतब गोस अब दाल(स)सूफी अने कलंदर,
पीरजादां मले सांज परभात।
कांन पतसाह रा मरे एक राह कज,
वरे नहँ पड़े जसवंत जिते वात ॥१॥

लची कराड़ै अरज काजी मुलां,
पाड़जे देवहर दलां कर पेल।
मेछ वांचे जका हींद अकलीज मझ,
खड़ो राजा जेते घणे नह खेल ॥२॥

अरथ कर नवा फुरमाण री आयतां,
लियां कर साहरे कांन लागे।
कहे मकदूम जुग हेक मजहब करो,
जसो हींदू घरम मदत जागे ॥३॥

देवलां मूरतां हूँत जौ कणी दिन,
सुरम री डीकरो कुवद खेले।
दूठ तो तुरत गजसिंघ रो दीकरो,
मसीतां आभरा धुंआ मेले ॥४॥

सुरह दुज देव तीरथ निगम सासतर,
जनेऊ तलक तुलसी नरंजण जाप।
राह हींदू धरम तणे सावत रहै,
प्रगट मुरधर धणी तणो परताप ॥५॥

(रच०-अज्ञात)

अर्थः—कपट-गोष्ठी कर के सूफी, कलंदर और पीरजादे श्याम सुबह आते हैं और बादशाह के कान भरते हैं, कि जब तक महाराजा जसवंतसिंह जीवित है, तब तक हिंदू और मुस्लिमोंका मजहब एक होना कठिन है।

मौलवी, काजी और मुल्लां अर्ज कराते रहते हैं कि हे बादशाह! आप भले ही सेना बढ़ा कर देवालयों को ढहादें, परन्तु इस समय, जब तक कि महाराजा (जसवन्तसिंह) अपने कदमों पर खड़ा है, हिन्दुओं का यवन कहलाना कठिन है।

(मौलवी आदि) खुदा के फरमान की आयतों का उलट सुलट अर्थ कर शाह को समझाते हैं और कहते हैं कि दोनों (हिंदू और यवनों) के मज़हब को एक बनाना आवश्यक है; परन्तु जसवंतसिंह हिंदू धर्म को बना रखने के लिये तैयार है (वह हिंदू धर्म को नष्ट नहीं होने देगा)।

देवालयों और मूर्तियों पर जब किसी दिन खुर्रम (शाहजहाँ) का पुत्र (औरंगजेब) आपत्ति ढाह देता है, तब वह गजसिंह का पुत्र (जसवंतसिंह); मस्जिदों को जला कर आकाश को धूम से आच्छादित कर देता है।

गायें, द्विज, देवता, तीर्थ, निगम, शास्त्र, तिलक, तुलसीदल एवं निरंजन भगवान् का जप आदि हिन्दू धर्म संबंधी रस्में, जब तक मारवाड़-स्वामी हैं, तबतक बनी रहेंगी (उसके अभाव में ही मिट सकती हैं)।

महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम, (जोधपुर)

—: गीत २६ :—

धड़हड़ीयो सुणे वाजते ढोले,
हूय बागी कलपंत हुवा।
धूंहड़ ऊलटते धवलागिर,
सोद पखे कुण धरे खत्रा ॥१॥

आईसां तणा बरफ ऊपड़िया,
बेवड़िया गुड़िया बंगाल।
जसो पहाड़ हेमगिर जाणे,
तरफ तरफ तूटे रिखताल ॥२॥

तूटो असण गसण तरवार्‌यां,
भीक वहे सावलां भल।
गलिया गजन तणे धवलागिर,
दहुँ पतसाहां तणा दल॥३॥

अवरंग घाट थाट ओहटिया,
धड़ मेला लोटे धरणि।
वाले हेम जेम वाहुड़ियौ,
रूक रहलि दे झींक रण॥४॥

(रच०-बारहठ नरहरदास)

अर्थ:—धवल-गिरि-तुल्य धूहड़ राठौड़ (जसवंतसिंह) ढोल आदि रणवाद्यों के बजने पर जब धड़धड़ाने (गर्जने) लगा, तब विरोधी यवन पीड़ित होगये। उनकी रक्षा के लिये (वहाँ) ऐसा कोई भी दिखाई नहीं दिया, जो कंधे से कंधा मिलाता।

हिमाद्रि-तुल्य महाराज जसवंतसिंह जब बर्फ की तरह शस्त्र-वर्षा करने लगा, तब शाह के पक्ष की बंगाली सेना कट २ कर गिरने लगी। उस समय वह वीर चारों ओर लगातार वार करने लगा।

गजसिंह के उस धवलगिरि-तुल्य पुत्र (जसवंतसिंह) ने दोनों बादशाहों (शाह तथा शाहजादे) की अश्वारोही एवं गजारोही सेना नष्ट करदी। उस समय उसके कुंत-प्रहार की ज्वालायें (सब ओर) फैलने लगीं।

उस राठौड़ राज (जसवंतसिंह) ने, औरंगजेब के वीर-समूह, को जो उसी के सदृश (बलशाली) था, दबा दिया; जिससे वीरों के शव एक ही जगह लुढकने लगे। (इस प्रकार हिमाद्रि-तुल्य वह वीर युद्ध

में लगातार खड्ग-प्रहार कर शाही दल को दग्ध करता (अथवा लौटाता) हुआ अपने स्थान को लौट आया।

राठौड़ जोधसिंह

—: गीत ३० :—

रयण चाढ अवगाढ़ आरण धखैं रारियां,
जोध चारण घड़ी समर जारो।
हद हुई गेन डारण तणा हाव रो,
खलां उर दुसारण कूंतवारो ॥१॥

नहँग लग तोल़ वागां विकट नगारां,
मह अणी चगारां रगत मांजो।
कलोधर जगा रा धाड़ थारां करां,
गज खलां वगारापार गांजो ॥२॥

जोम छक हरक जड़ियाल़ भंजा गजां,
जेण तक वजर पड़ियाल़ जाणां।
जहर री छाक कड़ियाल़ तोरण जुधां,
पेमहर असो छड़ियाल़ पाणां ॥३॥

अरहरा घमोड़ा पाद धर अचीतो,
वडम भुज रचीतो वरद वांनो।
शेल थारे कमँध दखणपत सचीतो,
महावल़ नचीतो भूप मानो ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वीर जोधसिंह ! युद्ध-समय तेरा भाला उठा रहने वाला एवं धधकती हुई लोहकार की अहरण के समान है, जिससे गज समूह भस्मसात् होजाता है। हे भयंकर वीर ! तेरे उठे हुए भाले की सीमा गगन-मण्डल है (तेरा भाला गगनस्पर्शी है) और शत्रु-हृदय को विदीर्ण कर खटकने वाला है।

हे जगा की कला को धारण करने वाले वीर ! युद्धार्थ भयानक नक्कारे बजने पर तेरे हाथों में सुशोभित रहने वाला भाला आकाश को उठाने वाला, सेना में रक्त द्वारा माँजा जानेवाला और हाथियों एवं दुश्मनों को विदीर्ण करने वाला बन जाता है।

हे पेमा के पौत्र (या वंशज) ! तेरे हाथों में रहने वाले भाले को जब तू गुरूर में आकर चलाता है, तब उसके वज्र-प्रहार से हाथी नष्ट हो जाते हैं तथा युद्ध समय कवचों को नष्ट करता हुआ जहर की घूंट-सा (दुश्मनों को) प्रतीत होता है।

हे राठौड़ वीर ! तेरे हाथों में रहने वाला यह भाला शत्रुओं पर अचानक वार करता है। तेरे प्रलंब-बाहुओं को यश देता हुआ शोभा बढ़ाता रहता है। दक्षिणी वीरों को युद्धार्थ सचेत करनेवाले तेरे इस भाले के बल पर ही महाराजा मानसिंह (जोधपुर) सदानिश्चिन्त रहता है।

राठौड़ जालमसिंह (मेड़तिया, कुचामण)

—: गीत ३१ :—

प्रलै साधवा फूटियौ सिंध वारध के लोप पाजां,
करी धू पटेत हकै छूटियो क्रोधार।
काळ पाख महा वेग तूटियो नखत्र किना,
जालमो उताळे रोस जूटियो जोधार ॥१॥

रजै तेण तमासा सू रुकेगी आयास रत्यी,
धार सत्यी नचै के ततत्यी वीरवाड़ ।
वखतेस महारास्थी केरवेस हूंत वागो,
रूकां ज्युं पारयी जालो लयोवत्यी राड़ ॥२॥

खिले मंत्रधार काली सिधा वज्रवाली खूटै,
सार जाली तूटे सिंध फूटे श्रीण सीर ।
जालमो अतूटै खेध इसै वेध लागो जूटै,
वाणासां विछूटै घाट छूटै नधी वीर ॥३॥

चीसे नाग चमूं जोम हुवे तोम चकाचूंध,
धमे कोम भमैं गोम पड़ै सार धोम ।
विग्रहंतो देख महा असोम संग्राम वोले,
वाह वाह अहो सूर गिरवांण वोम ॥४॥

जूझ मत्ते आहंसी किसोर वालै तीन जाम,
रूकां भीम नाद कीन दलां सूरो धाण ।
इलां जोधाणेस वाली नूं थपें जालमों ऊभो,
जालमो पाड़ियां पछे ऊथपे जोधांण ॥५॥

(रच-खड़िया हुकमीचन्द)

अर्थः—योद्धा जालमसिंह क्रुद्ध होकर शत्रुओं पर इस प्रकार झपटा मानो सिंध देश का समुद्र तूफान पर आकर फूट पड़ा हो, हाथियों पर क्रुद्धसिंह झपटा हो, पक्षधारी सर्प उड़ा हो अथवा नक्षत्र टूटा हो ?

महारथी कौरवेशरूपी बखतसिंह के साथ जब अर्जुन तुल्य जालमसिंह गुत्थमगुत्था होकर जुट पड़ा, तब (रण में) सशस्त्र वीर-नृत्य होने लगा और उस कौतुक को देखने के लिये सूर्य ने आकाशमार्ग पर अपना रथ रोक लिया।

वीणा लिये हुए नारद एवं कालिका दोनों प्रसन्नमुख दिखाई दिये, सिद्धों की दृढ़ समाधि खुल गई, सिंह-सदृश वीर शस्त्र ग्रहण कर टूट पड़ने लगे एवं रक्त का स्रोत फूट पड़ा। (इस प्रकार) अभंग वीर जालमसिंह, शत्रुओं से भिड़कर उन्हें खदेड़ने लगा और तलवार के घाट उतारता हुआ रणस्थल से नहीं हटा।

सैन्य भार से शेषनाग सिसकने लगा, आग्नेयास्त्र के धूम एवं ताप की ज्वालाओं से चकाचौंध छा गई, कच्छप ऊर्ध्व श्वास लेने लगा, आकाश चक्कर खाने लगा और धमाके के साथ शस्त्राघात होने लगे। इस प्रकार जालमसिंह को उत्पात मचाता हुआ देख कर आकाश से देववाणी में देवतागण "धन्य है! धन्य है!!"—कहने लगे।

किशोरसिंह का मतवाला पुत्र जालमसिंह, तीन प्रहर तक झगड़ता रहा। उसने भीम-गर्जना करते हुए अपने खड्ग से शत्रुसेना को नष्ट कर जोधपुरेश्वर का आधिपत्य पृथ्वी पर स्थापित कर दिया। यह देखकर सब कहने लगे कि इस वीर के अभाव में ही मरुनरेश का आधिपत्य च्युत हो सकता है।

राठौड़ जगमाल

—: गीत ३२ :—

सेनै साइयो समंद्र सोहे संसार सिरै सुकर;
उबारीजै दीजै मौजां इला अखियात।

पाट रो ऊवोर पिता पाट जागे पाटपति,
छाडाइरो जगमाल हींदूकां री छात ॥१॥

चावरे चरु सुकाल चीतजे ऊडंड चाउ,
सोह चाढे मालां सही सत्रां उरे साल।
निग्रहे अभंग नाथ डोहणे थाटां निडार
रेणा रखवाल् राजै दूजौ रिणमाल ॥२॥

नामणे अनंमा नाद् नवां कोटां चाढे नीर,
थाच अया आज जिसो उदाहरो इंद।
दाखणो अदेखां देख दीपियो हींदू दुम्बाल,
मारुवो महीप दूजो मालदे मयंद ॥३॥

मावणो त्रिवेधी घड़ा मेलणो मिड़ज माले,
दाहणौ गयंदां खेति ढंढोलणो ढाल।
आगली दला अभंग जैतखंम हुवौ जुवे,
जोधाइरो जग जेठ जोध जगमाल ॥४॥

केहरी उदल माल गंग वाघ सूजै जोध,
रिणमाल चौंडै वीर सलख रंढाल।
वीडै छाडै आल्ह कान्हड़ राड़पाल धूंधै आसे,
राठौड़ राजंती सीहै छला रखपाल ॥५॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—वीर जगमाल की अश्वारोही सेना समुद्र तुल्य है। यह अपने हाथों द्वारा रक्षा करता तथा दान देकर अनुपम ख्याति प्राप्त करता रहता है। राज्यसिंहासन का रक्षक एवं अपने पिता के सिंहासन पर सुशोभित होने वाला है। यह छाडा का वंशज हिन्दुओं का छत्र है।

श्रेष्ठ भाग्यवाला यह वीर युद्ध के समय उद्दंड होकर मृत्यु को बसाने के लिए उत्सुक रहता है। मालदेव के वंशजों की शोभा बढ़ाता एवं शत्रुओं के लिए नाटशल्य (शस्त्र की अनी) के समान है। यह अभंग वीर निर्भीक शत्रु-समूह को नष्ट कर देता है। कवियों की रक्षा करने में यह दूसरा ही रणमल है।

अनम्र वीरों को यह गर्जना करके झुका देता और मरुप्रदेश को कान्तिमान बना देता है। ऊदा के वंशजों में आज यह इन्द्र रूपी होकर अपने हाथों दान देता रहता है। इसे देख कर यही कहना पड़ता है कि इसके समान दूसरा कोई नहीं है। यह हिन्दू वीर भयानक और दीप्तिमान है। मरुदेशीय यह वीर दूसरा ही माल देव है।

त्रिविध (अश्वारोही, गजारोही और पैदल) सेना को नष्ट करने हाथ में भाला ले, घोड़े पर सवार होकर रणस्थल में प्रवेश करने, हाथियों को गिरा देने, ढालरूपी वीरों की परीक्षा लेने और सेना के अग्रभाग में रहने वाला, अभंग विजय-स्तंभ के समान जोधा का वंशज वीर जगमाल संसार में बड़ा वीर कहा जाने वाला है।

सिंह-तुल्य इसके पूर्वज-ऊदा, मालदेव, गांगा, वाघा, सूजा, जोधा, रणमल, चूंडा, हठीला सलखा, टीडा, छाडा, जाल्हणसी, कान्हड़, रायपाल, धूंधा, आशा और सीहा हुए हैं। वैसाही यह राठोड़ रक्षकों का भी रक्षक है।

राठोड़ जगमाल (किशनसिंहोत)

—: गीत ३३ :—

खत्रवट वह खाग तियाग अखूटित,
समहर जीपणहार संत्र ।
तारण कवि, केहरी तणौ भ्रम,
जगो-जगो भाखे जगत्र ॥१॥

असिमर दान अभँग अण पहड़ित,
चित भालिम निय क्रित कुल चाल ।
प्रिसण वहण पत्र पड़ि गाहण,
जग सिगलोह आखे जगमाल ॥२॥

करिमर चाउ अभंग कुल-दीपक,
दीपै व्रिद मोटा सु दलि ।
अर ऊथापण कवि थापण इल,
मालहरो भ्रमणौं मंडलि ॥३॥

निकलँक खड़ग तियाग निभै नर,
गाढां गुर सबदी गजबंध ।
अरियण वडा वहण पिड़ि आचे,
कायम घड दन दियण कमंध ॥४॥

(रच०-अज्ञात)

अर्थः—हे केशरीसिंह के पुत्र (या वंशज) जगमाल ! संसार बार २ तेरा नाम लेकर यह कहता है कि यह वीर क्षत्रिय वट (मरोड़,

ऐंठ) धारण कर खड्ग चलाता रहता है। इस का अनुपम त्याग (दान) कवियों को पार लगाने (आपत्ति दूर करने) वाला है।

हे वीर ! तेरा नाम ले-लेकर जग पुकारता है कि यह खड्ग चलाने में अभंग वीर और दान देने में अपूर्व है। यह देखा गया है कि इसका चित्त अपने कुल-कर्तव्य की ओर रहता है। यह शत्रु का पत्र द्वारा सूचित कर उन्हें कुचल देता है।

हे मालदेव के वंशज ! सारा मण्डल (प्रदेश) कहता है कि यह वीर तलवार पकड़ने में उत्साही और नाश रहित कुल-दीपक है। जिस प्रकार यह उदारमना है उसी प्रकार इसके विरुद भी भारी हैं। यह शत्रुओं का नाशक और कवियों को स्थापित करने वाला है।

हे निर्भय राठौड़ वीर ! तेरा खड्ग ग्रहण करना और दान देना, दोनों ही निष्कलंक हैं। इसीलिए हे गजारोही ! तू दृढ़ वीर और बड़ा यशस्वी माना जाता है। अतः अपने हाथों से बड़े २ शत्रुओं का नाश करने और दान देनेवाले, हे वीर ! तू बहुत दिनों तक शासन करता रह।

राठौड़ जूझारसिंह (जगमालोत, नरसिंह दासोत)

—: गीत ३४ :—

वडिम वार वडवार खत्रभार धरियै विसवि,
डांडहड़ि सावलां खलां डोहै।
सिंघ झूझार नरसिंघ रा सींधला,
सूर वट सुपणवट भुजे सोहै ॥१॥

किये अणडोल चित कूंभ कूंभायलां,
हायलां खलां हणि पूर वण होम।
अत्रण घण घड़ा अवरी वरण वीर वर,
विराजै उमै विद भुजे वरियाम ॥ २ ॥

ऊजला कमँध भूपाल-हर आभरण,
मिड़णि खगि जैत सूंडाल मांजै।
अतुल बल तांहरै सु तणि ऊँचासिरा,
छलां रखपाल वे साह छाजै ॥ ३ ॥

समर जीपै सबल वडा खाटै सुजस,
जिको जो जिहीं कुलवाट जोवै।
सूर सुदवार झूझारसिंघ (तो जिसा),
हुवै कित इसा ताइ जरू होवे ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे नृसिंहदास के सिंह तुल्य पुत्र जूझारसिंह! तू भारी आपत्ति के समय पृथ्वीपर क्षात्र-भार को धारण कर तलवार एवं भालों के विशेष आघात से शत्रुओं का मर्दन कर देता है। इसीलिए तेरी ही भुजाओं पर वीरता और सुजनता दोनों साथ २ ही सुशोभित होती हैं।

हे वीर! तूने हाथियों के चित्त को चंचल और उनके कुंभस्थल को कुरूप कर दिया तथा अपने बल का विश्वास दिला दिया एवं करापात से शत्रुओं को नष्ट कर दिया। हे वीर श्रेष्ठ! तू विशेष दान देता रहता तथा वश में न आने वाली सेना को वश में कर लेता है। यह दोनों प्रकार के विरुद तेरी ही भुजाओं पर इस समय शोभा पाते हैं।

हे राजवंशजों के भूषण! तेरे ही कारण राठौड़ उज्वल हैं। तू भिड़ता हुआ तलवार द्वारा हाथियों को काट कर विजय प्राप्त करता रहता है। अतुल बलके कारण ही उच्च राजवंशजों में श्रेष्ठ तथा रक्षा करने से रक्षक, इन दोनों विरुदों से तू सुशोभित है।

युद्धों में विजय प्राप्त कर बलवान कहाना और विशेष यश प्राप्त करना यह वही कर सकता है, जो अपने कुल-मार्ग को जानता हो। परन्तु हे जूझारसिंह! तेरे समान जिनके कृत्य हों, वे अवश्य वीर और उदार कहे जा सकते हैं।

राठौड़ दयालदास (सूरजमलोत चाँपावत)

—: गीत ३५ :—

पह मिलियां कवी मनोरथ पूरण,
रिम अड़ियां मातै रणताल।
पैजां पाल उजालण परियां,
दल आगल झलहलै दयाल ॥१॥

पात्रां दन मोटा निज पांणे,
चौरंगि खलां सावलां चोट।
दूजो जैत दियंतां दीपै,
कटकां वधे दुवाहौ कोट ॥२॥

घण वींटियौ कवी मोटा घण,
घण सत्रवां वहंतो घाउ।
प्रनिकारां सुदरी ऊचवहौ,
सौहे सूरजमल सुजाउ ॥३॥

वाकारियां पधै चित वैला,
रेणु दनी रिम खगि राठौड़।
दलां सिंगार वियौ जैसिंघदे,
मिहि तिणि मलां मलौ कुलमौड़ ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वीर दयालदास ! तू प्रतिज्ञा-पालक एवं अपने पुरुषाओं को उज्ज्वलता देने वाला है। जब तेरे पास कोई कवि आता है, तब तू उसकी इच्छा पूर्ति कर देता है और शत्रु भिड़ने के लिये आता है, तो तू जाज्वल्य मान होकर एवं हरावल में डटकर लगातार शस्त्र प्रहार करता है।

हे दूसरे ही जेता ! तू दान देकर जिन हाथों से कवियों को सब प्रकार से सम्पन्न कर देता है, उन्हीं हाथों से चतुरंगिणी सेना पर भाला चलाता हुआ (दुश्मनों के लिये) दिवाल की तरह आड़ बन जाता है।

हे सूरजमल के सुपुत्र ! तू जब कवियों से घिरा रहता है, तब कृपणों से उन्नत दिखाई देता है तथा शत्रुओं पर प्रहार करने पर श्रेष्ठ वीरों से उन्नत मस्तक किया हुआ शोभा पाता है।

हे दूसरे ही जयसिंह ! पृथ्वी पर तू अपने वंश का सिरमोड़ है। सेना का शृंगार है। उच्चस्वर से आवाज देने (कवि द्वारा प्रोत्साहित करने एवं शत्रु द्वारा ललकार ने) पर तू एक (कवि) की तो सौभाग्य-वृद्धि और दूसरे (शत्रु) को खड्ग से नष्ट कर देता है।

राठौड़ दलपतसिंह (गोपालदासोत चाँपावत)

—: गीत २६ :—

वधे वाधियै विघन-विघना तणो विसाहू,
पवन उपड़ांखियै पिड़ि पईठौ।
डँचियै सेल पछ्विवांण करतौ दलां,
दलो - काबील सुर नरे दीठो ॥१॥

पाल रौ दलां रखपाल विरदाधपति,
पह वडा भलां तैं खाग पूजौ।
डोलिया साथ पूठै सत्रां डारतौ,
दले दहुँ पेखियौ मयँक दूजौ ॥२॥

खेंग खुरसांण रै खेति खूरै खरै,
कहर आफालतौ सुपह रैकांमि।
हिंगतो मीर मेळां घड़ा डोहतौ,
सयलचित चढे रिणिमाल-हर सामि ॥३॥

वाज वाढाड़ि दोइ वंसि चाढे वडिम,
घड़ां ध्रवि धार भूमे अघायौ।
जीवतो संभ दल साह दीपे जगति,
जेत्र हथ कमध गोपालि जायौ ॥४॥

(रच०-अज्ञात)

अर्थः—वीर दलपतसिंह रास्ते चलते आपत्ति को मोल लेने वाला है। युद्ध छिड़ने पर पवन-वेग से यह उन्नत स्कंध धारी आगे बढ़ता

हुआ युद्ध में प्रवेश करता और पश्चिम-देशीय (काबुली) सेना को सहज ही काटता हुआ सुर नरों को दृष्टिगोचर हुआ।

यह पाला का वंशज दूसरा ही चाँदा (या जयचन्द्र) है। इसके विरुद दल-रक्षक होने से बड़े २ राजा इसकी तलवार की पूजा करते हैं। इसके द्वारा मारे गए वीरों को झोलियों में डाल और पीठ पीर लाद कर ले जाते हुए शत्रुओं को दोनों सेनाओं ने देखा।

इस 'रणमाल के वंशज ने युद्ध में भिड़कर अपने स्वामी के काय के लिए खुरासानियों (यवनों) को काट कर अश्वखुरों से कुचल दिया। शत्रु समूह को हटा कर यवन सेना को नष्ट कर दिया। उस समय इसका वीर स्वरूप सबके चित्त में बस गया।

इस गोपालदास के पुत्र विजयी राठौड़ ने घोड़े को युद्ध स्थल में बढ़ाया और सेना पर तलवार चलाई। इसने युद्ध में तृप्त होकर (भारी युद्ध करके) मातृ और पितृ पक्ष को गौरवान्वित कर दिया। यह जीवित शुम्भ दानव सा सुशोभित हुआ।

राठौड़ धीरतसिंह (अमरसिंह का वंशज)

—: गीत ३७ :—

चोड़े झांपता विड़ंगा ताता बोलता जरद्दां चाक,
  बाजतां सिरमी पाना होतां रनां बाट।
    उडंता बंदूकां आग जागता छड़ा (ला) अणी,
      नगारा धुवंतां आयो अछायो निराट ॥१॥
करा के ऊघड़ा खाग तोड़े आंग क्यां हकारे,
  छाकियां क्या हकां भुजां वालिया छड़ाल।

चाल् बांधी काल् रूपी नाल् वाला रागां चाटि,
ताल् पाखे अचेना सू' मेले निरातालं ॥२॥
झाल् घाव जांगियां कुराण बाच लगा वोम,
रोस मीना दोवड़ा चव्ल्ला ऊडे रीठ,
साड़कां छड़ाला धारां कटारां जवंना सेती,
ताखा भड़ा चापूकारे मेलिया नतीठ ॥३॥
धरा धूजि आगी जागी मिसा दीह धूंवाधोर,
तेज हास हँसि एक डाक ताल् ।
सारधारां मातो खेह भाई चाडि रोल् सींह,
कोट मेल् घोल् दीह मेछां प्रलेकाल् ॥४॥
अमरेस वाल् पाट हेट हेट ज़ैतवार,
मड़ा रा चकारां पोतकारे आंपनीर ।
पांणी चाड़ मेड़ते मीरखां डाँडि रूकां पांण,
थाड़ रं मांटीपणे जीतो राड़ धीर ॥५॥

(रच०-खड़िया वगता)

अर्थः—कवच कसे हुए वीर धीरजसिंह युद्ध स्थल में (दुश्मनों को) ललकारता, तलवार चलाता घोड़े बढ़ाता, सेना में रास्ता करता, तुपकें चलाता, भालों से आग बरसाता और नक्कारे बजवाता हुआ अपने साथियों सहित अकस्मात दुश्मनों पर आ धमका ।

वीर धीरतसिंह ने जब अपनी सेना को यम-पाश के रूप में पंक्तिबद्ध किया, तब कई यवन तलवारों से काटे जाने लगे, ललकार के साथ कई तुपकें दागी जाने लगीं, कई वीर घायल होकर भी बढ़ने लगे;

कितने ही वीरों की भुजाओं पर भाले शोभने लगे और तुपकों से छूटकर गोलियाँ भुन्नाने लगी। (इस प्रकार) उसने क्षणभर में ही यवनों को उथल पुथल कर दिया।

जब यवन भी एक ओर से कुरान पढ़ते एवं आकाश को छूते हुए नक्कारे बजवाने लगे,। तब दोनों पंक्तिबद्ध क्रुद्ध सेनाओं में शस्त्र झड़ी होने लगी, उस समय दूसरी ओर से धीरतसिंह अपने साथियों का उत्साह बढ़ाता हुआ बाण, भाले, तलवार एवं कटारों के वार यवनों पर जोरों से करने लगा।

आग्नेयास्त्रों (तोपों आदि) से आग धधकने पर (चारों ओर) धूम ही धूम छा गया, जिससे दिन भी रात सा बन गया। (उस युद्ध से) पृथ्वी कंपायमान हो गई, ताते (तेज) घोड़ों की हिन हिनाहट एव उछल कूद में टापों की ध्वनि होने लगी। इस प्रकार वह यवनों का प्रलय काल रूप एवं सिंह सदृश वीर धीरतसिंह, मस्ती में आकर तलवार चलाता और अपार रजराशि से आकाश को आच्छादित करता हुआ दिन दहाड़े दुर्ग में प्रविष्ट हो गया।

अमरसिंह के सिंहासन पर सुशोभित होने वाले उस वीर धीरतसिंह ने हठपूर्वक विजय प्राप्त करते हुए यवन योद्धाओं के नूर (कान्ति) से पोत कर मेड़ते दुर्ग को कान्ति युक्त कर दिया और तलवार के बल मीरखां को दंडित कर अपनी सेना द्वारा जय प्राप्त की।

राठौड़ नरपाल[1]

—: गीत ३८ :—

आखेटी थाट जोध आफलिया,
भुजि नरपाल भले कुलमार।

---

[1] इसे संग्रह में नरहर दास लिखा है।

भांण तणौ रहियो मारी हथ,
दातड़ियाल मिरंती डार ॥१॥

ईसर हरौ थोमियौ अणभँग,
घसतौ ऊससतौ कुल थौड़ ।
डार सनाह जाऊते दूजे,
रिणि रोहै सोहै राठौड़ ॥२॥

बीजूजल दांत दूसरौ बीकौ,
साहे आवाहे सबल ।
खल पारधी गुड़थल खायै,
दाढालीसिरि हूँकलै दल ॥३॥

राणा हरौ रूँधो वीरा रसि,
औखालै माले अपल ।
मरि मारियो धणे मार हथे,
मारू एकल आप मल ॥४॥

(रच०-अज्ञात)

अर्थः—युद्ध में विपक्षी योद्धाओं के शिकारी की तरह जुट पड़ने पर वीर नरपाल जो भाण का पुत्र एवं प्रलंब बाहु था, उसने राठौड़ वंश का भार अपने बाहु पर लिया और छोटे २ शूकर सदृश अपने साथियों के नष्ट होजाने पर बड़ी २ दंतूसल वाला बाराह बन गया।

छोटे शूकरों की टोली के समान अन्य साथियों के भाग जाने पर ईशरसिंह का अभंग वंशज (नरपाल) युद्ध में (बाराह बनकर) डट गया। उस समय वह धूहड़ वंशी शुद्ध राठौड़, शत्रु-समूह में घिर कर शोभा पाने लगा।

उस दंष्ट्राधारी वाराह सदृश वीर (नरपाल) ने तलवार उठाकर उसे दंतूसल का रूप दे दिया। तदनन्तर जब वह दूसरे चीका (वीर विशेष) के समान हकर (हुँकार) कर शत्रु के सामने बढ़ा, तब व्याध-तुल्य शत्रु जमीन पर गिरने लगे।

उस राणा (उपाधि अथवा नाम विशेष) के वंशज राठौड़ (नरपाल) जो स्वतंत्र विचरण करने वाले वाराह के समान था, उस ने (युद्ध में) भिड़ कर अतुलनीय शत्रु वीरों को भाले से खदेड़ते हुए वाराह-सदृश रौंधा जाकर मृत्यु प्राप्त की।

राठौड़ नरपाल (नरहरदास, माणौत, चाँपावत)

—: गीत ३६ :—

वल् चड़ियां भड़ा वाधियें वीरत,
केवी सौं ऊकटियै काट।
आडो लख थाटां अड़सालौ,
नरपालौ मांडिजे निराट ॥१॥

कलि वाधी जैतमल कलोधर,
गज फौजां डोहण गहण।
समहर भर ऊपरि नवसहसौं,
ताइ ग्रोड विजै मांण तण ॥२॥

खागां हथि गैं डसण खाट कै,
वीर हाक वधियै वकवाद।
चौरंगि अभंग तणौ व्या चांपा,
दृढ जोवैं दल् मेर प्रजाद ॥३॥

पिडी फौजां मांझी पाड़ीजे,
पांणे जल चाढिजै परो,
प्रवि प्रवि अवड़ो हुवै पराक्रम,
हणमत काइ रिणमाल हरो ॥४॥
(रच०-अज्ञात)

अर्थः-वीर नरपाल (नरहरदास) शक्ति प्रदर्शित कर अपने वीरों में वीर-रस की वृद्धि कर देता है और क्षुधित की भांति शत्रुओं को काट देता है। यह अरिसाल का वंशज लाखों की संख्या वाले सैन्य-समूह को रोकने के लिए सवेग बढ़ने वाला है।

जैतमाल की कला को धारण करने वाले इस वीर ने अपनी कला (कान्ति) में वृद्धि कर दी है। यह भारी गजाराही सेना को भ्रमित कर देता है और युद्ध में यह भाण का पुत्र वीर राठौड़ सब वीरों से उच्च तथा अगेला स्वरूप माना जाता है।

खट खटाता हुआ इसका खड्गाघात हाथियों को भक्षण कर जाता है और युद्धवाद छिड़ने पर यह वीर हुंकार करता रहता है। इसका यह अभंग पन चौगुना प्रशंसनीय है। यह तो दूसरा ही चांपा है और मर्यादा का साक्षात् सुमेरु है। सारी सेना इसका मुँह देखती है रहती (इसी की वीरता पर निर्भर है)।

यह सेनाओं के मुखियाओं को धराशायी कर अपनी शक्ति द्वारा कान्तिमान हो जाता है। हनुमान के समान शरीर वाला यह रणमाल का वंशज प्रत्येक युद्ध में ऐसा ही पराक्रम दिखाता रहता है।

राठौड़ पृथ्वीराज (दलपतोत)

—: गीत ४० :—

दळां चाल बांधे भले भार दळ साह रै,
आफळे खळां लागे उवाणे।
दीह घोळे मिले करमसी दूसरै,
पीथले मेलियौ कलह पांणे ॥१॥

ऊधरण वंश हरदास-हर आभरण,
जिड़े रिणवट नकां जांज जोई।
जको घरथंभ राठौड़ हूँतौ जगति,
सार भरि हुवौ दळथंभ सोई ॥२॥

कियो घोड़ां भड़ां मेल ऊखेल करि,
वांकुड़ो ढूकड़ै वैरि वागे।
धूहड़ाराइ औनाड़ि चाढे धकै,
खैड़पति डोहियौ मांड लागे ॥३॥

मझरि विकमपुरौ राऊ आपड़ि मुवौ,
वाजते नगारे कलह चीतो।
पाडि ऊभो खळ दूसरौ पंचाइण,
जादवां खेत राठौड़ जीतौ ॥४॥

(रच०-अज्ञात)

अर्थः—वीर पीथल (पृथ्वीराज) जो दूसरा ही कर्मसिंह सदृश था, ने सेनाको पंक्तिवद्ध किया तथा शाही-दल का भार लेते हुए

तलवार उठाकर दिन रहते (दुश्मन से) भिड़ गया। (इस प्रकार) उसने शत्रुओं से युद्ध में हाथ मिलाया।

वह राठौड़-कुल- भूषण हरदास का वंशज (पृथ्वीराज) अपने वंश का उद्धार करने के लिये शत्रु-सेना की, यद्यपि वह झंझावात-सदृश (भयंकर) था, परवाह नहीं कर युद्ध में भिड़ गया। संसार में जो धरा-स्तंभ कहा जाता था, वही वीर शस्त्र-भार ग्रहण कर दल (सेना) का स्तंभ बनगया।

उस पर्वतकाय धुहड़वंशी बांके खेड़ेचे (राठौड़) वीर ने (सामने से) हाथियों को हटाकर घोड़ों और वीरों से टक्कर ली तथा विपक्षियों का पीछा कर उन्हें भगाते हुए खड्ग द्वारा उथल पुथल मचादी।

यद्यपि वह बीकापुर (बीकानेर) का राजवंशज (इसप्रकार) प्रमत्त होकर धराशायी हुआ और नक्कारों के बजते हुए युद्ध की समाप्ति हुई; फिर भी उस पंचायण तुल्य वीर ने खड़े होकर शत्रुओं को धराशायी कर दिया और युद्धक्षेत्र में यादव (या-भाटी) क्षत्रियों पर विजय प्राप्त की

राठौड़ पृथ्वीराज (भीमोत, ऊदावत)

—: गीत ४१ :—

दल आगल सबल रतनसी दूजा,
कुल मारगि ऊभियै करि।
पौरिस वडिम तुहारा पीथल,
पार न लाधो किणही परि ॥१॥
इनि मौहरी पूजै अतुली बल,
समहर सुकवि सुयण वट सीम।

रज रखपाल रूप राठवड़ां,
भालिम नमो समोभ्रम भीम ॥२॥

कटकां वधि दाखै राव कमधज,
पौरिस खल् ईढगां प्रमाण।
सयल् वखांण करै नव सँहसा,
क्रित यन धन अभिनमा कल्याण ॥३॥

मड़ां किमाड़ निरखहै भुव ब्वलि,
सार सु दनि ऊदा सनस।
जुध आचार्‌ार अभिनमा जसवँत,
जग दीपै ऊजलौ जस ॥४॥

(रच०–अज्ञात)

अर्थः—हे बलवान पृथ्वीराज ! तू दूसरा ही रत्नसिंह है। तू कुल-मार्ग पर पग बढ़ाता और हाथ उठाता हुआ सेना के अग्रभाग में दिखाई देता है। तेरे विशेष पराक्रम का किसी ने पार नहीं पाया।

हे अतुल बली ! तू युद्ध के समय हरावल के आगे श्रेष्ठ कवियों, सज्जनों और क्षात्र वट की सीमा कहे जाने वाले वीरों द्वारा पूजा जाता है। क्योंकि तू रजोगुण प्रधान और राठौड़ों का शोभा स्वरूप है। अतः हे भीमसिंह की भ्रान्ति देने वाले भाग्यशाली ! तू वंदनीय है।

हे नूतन कल्याण, राठौड़ वीर ! तेरे जैसे (पहले हो चुके) वीरों के समान तुझे सेना में बढ़ता हुआ देखकर शत्रु भी तेरा पुरुषार्थ मानते हैं और सारा मरु प्रदेश प्रशंसा करता हुआ कहता है कि इस वीर का यश धन्य है !

हे वीर ! तू सामन्तों का कपाट (रक्षक) कहा जाता है। उस विरुद को तू अपनी भुजाओं के बल पर निभाता है। तेरा लोहा रखना (शस्त्र धारण करना) और भाग्यशाली होना ऊदा के समान है। युद्ध-क्रीड़ा में तू नूतन जसवन्तसिंह कहा जाता है। अतः तेरे उज्ज्वल यश से संसार देदीप्यमान है।

राठौड़ पीथल (पृथ्वीराज या पृथ्वीसिंह, भारमलोत)

—: गीत ४२ :—

पुरुषारथ समथ पराक्रम पीथल,
ध्र,हड़ धन तै खत्र-धरम।
दिन जेतला अखाड़ा दीपै,
वरिस जिता तेती वडम ॥१॥

मोटा जल़ चाढण मंडोवरि,
समहरि गज गूडण सनद़।
ऊदै खल़ सो आफल़ते,
गढ़पति होवै फते गढ़ ॥२॥

ताइ सामंतां मुहर आडै तण,
भुज बल़ लियै साखियौ भांण।
पाखर रवद बल़ाउत पर मुड़,
पतसाहे पूजिजै प्रमांण ॥३॥

पाड़े खल़ पड़ि पड़ि ऊपड़ियौ,
भारथि दल़ डोहे अभंग।

दिल्ली सुपह तेजसी दूजा,
दाखै भुज पूजा दुरंग ॥४॥

महि श्राभरण विश्रा भारहमल,
भड़ा भयंकर महाभड़ ।
साखी जस ऊँचो सम धार्यो,
ऊँच बांण श्रामां अनड़ ॥५॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे राठौड़ वीर पीथल ! तू पुरुषार्थी, सामर्थ्यवान् और पराक्रमी योद्धा है। तेरे क्षात्रधर्म को धन्य है ! अन्य वीर एक वर्ष में जितनी ख्याति प्राप्त कर पाते हैं, उतनी ख्याति तू एक दिन में प्राप्त कर लेता है।

हे दुर्गाधिप ! तू मंडोवर को विशेष कांतिमान करने के लिये सजग होकर युद्ध में हाथियों को गिराता रहता है और प्रतिदिन सूर्योदय होते ही शत्रुओं से जुट कर दुर्गों पर अधिकार करलेता है।

हे वाला के पुत्र (या वंशज) ! तू योद्धाओं में अग्रगण्य एवं उनके लिये अगेला स्वरूप है। तेरे भुजबल का साक्षी सूर्य है। तू पराये भूभाग में यवनों का रक्षक बन जाता है; इसीलिये शाह तेरी पूजा करता है।

हे वीर ! घायल होकर धराशायी होते हुए भी तू खड़ा हो जाता है एवं शत्रुओं को पछाड़ देता है तथा (युद्धमें) (शत्रु की अभंग-सेना को उथल पुथल करदेता है। इसलिये तेरी भुजाओं की पूजा करता हुआ (शाह) कहता है, कि यह दूसरा ही तेजसिंह-सदृश भयानक वीर है।

हे दूसरे ही भारमल ! तू पृथ्वी का भूषण है। योद्धाओं में भयानक एवं महान् वीर है, तेरा यश जिस तरह उच्च है, उसी प्रकार तेरी टेक (मर्यादा) भी उच्च है और तू स्वयं चमकते हुए पर्वत (सुमेरु)-सदृश उन्नत है।

महाराजा बलवन्तसिंह (रतलाम)

—: गीत ४३ :—

वडा वडी रो अखूल कनां पती त्रिलोक रो वांण,
लगावे झोकरो हिये दलेसां लड़ाल।
प्राण खलां थोकरो लेवाल लंकालरो पंजो,
छोकरो काल रो वखं तेस रो छड़ाल ॥१॥

अग्रियामणा घाट रो गुलालो रहे श्रोण आलो,
उरां सालो फेरुं फते खाट रो अधूत।
रोखंगी जलालो शत्रां थाट रो वखेर राले,
प्रथीनाथ वालो मालो जुजाट रो पूत ॥२॥

खिजायो त्रिनेण अलकाल रो रिमां धू खंगे,
पांखियो नागेंद्र फते पाव रो प्रभाव।
लेवाल अंतरो गजां घावरो सुमार लागे,
सेल मारू-राव रो कवांत रो सुजाव ॥३॥

अवतेस नद लागे झोकरे लड़ाल पाणां,
भलवके तड़ाल रूपी वागता भारात।

आद ब्रह्म घावे को जोगींद्रं वचे काल आगे,
ना वंचे छट्टाल आगे शत्रू प्रथीनाथ ॥४॥
(रच०—अज्ञात)

अर्थ:—हे दलथंभसिंह ! यह तेरा भाला है अथवा योगिनियों में सबसे बड़ी देवी का त्रिशूल है ? या त्रैलोक्य के स्वामी राम का बाण, युद्धार्थी दिल्लीश्वरों के हृदय में चिंता उत्पन्न करने वाला, सिंह का पंजा अथवा यमराज का पुत्र है ?

हे पृथ्वी पति! तेरा यह रक्तरंजित भाला विद्युल्लता-सा है,शत्रुओं के हृदय में चुभकर विचित्र विजय पाने वाला,रोषभरे जालिम शत्रुओं के समूह को तितर बितर कर देने वाला अथवा काल (मृत्यु) का पुत्र है ?

हे राठौड़ राज ! आपका यह भाला कुपित शिव का तृतीय नेत्र है ? अथवा शत्रु-मुंडों के लिये प्रलय-रूप, जय देने वाला सपक्ष-सर्प, आघातों में हाथियों का प्राणहर्ता या यम का पुत्र है ?

हे पर्वतसिंह के पुत्र पृथ्वीपति ! तू जब झूमता हुआ युद्ध के समय अपने प्यारे भाले को उठाता है, तब वह बिजली की तरह चमकता हुआ दिखाई देता है। संभवतः कोई महान् योगी ही ईश्वर का स्मरण कर काल से बच सकता है; परन्तु तेरे इस भाले के समाने तो कोई भी शत्रु किसी भी दशा में नहीं बच सकता।

महाराजा बलवंतसिंह (रतलाम)

—: गीत ४४ :—

कीधा सुवारी ठिकाणधारी आणिया सुमारां कोते,
छंदा दाना केही पंचहजारी छलूत।

माया अभ्र छाया रूपी टिगारी जिहान मोये,
बापो छत्रधारी मोयो न जावे बलूंत ॥१॥
धरा गाडे तो भी आप मते आकुलावे धरा,
सूम थाका बिचारा लुकावे भेली संच।
लछी वसीभूत सारां अमीरां भ्रमावे लारां,
पचा चालो धूत थारा न माने प्रपंच ॥२॥
करी राजा जरी जास, तासां वाजराजां कासा,
आसा पूर पातां चीत दिलासा अपार।
मीठ रा ढुलाया आथ तमासां मोहणी मंत्रां,
भूरो घणा हासा — खेल लूटावे भंडार ॥३॥
वाग्गीत हीयरा मांण अदातां जाचते वाळे,
नेत्रा ठाळे वारूवार संभाळे निधांन।
खांगीबंध मोजां ठाळे अखुट खजांनां खोले,
चाळेलागो आळेमाट ऊधमे चौगान ॥४॥
माळे दीठ सुधा जठी आसागीरां भूक भागे,
आचां खटी सोभा जोस अथागे अरोड़।
बीसळेस बीस कोड़ दटी सो गमाई वागे,
राजा रीभ छंदा लागा धूपटी राठोड़ ॥५॥
(रच०-अज्ञात)

अर्थः—बादलों की छाया सदृश (क्षणिक) इस लक्ष्मी ने कितने ही भूमिपतियों को (स्वार्थ) से परेशान कर कृपण स्वभाव

के बना दिया, नाजू नजरों में कई पंचहजारी (मनसब धारियों) को भी छल लिया। इस प्रकार इस (लक्ष्मी) ने समस्त संसार को मोहित करलिया; परन्तु पोषण कर्ता छत्रधारी बलवंतसिंह को मोहित न कर सकी।

कृपण व्यक्ति लक्ष्मी को संचित एवं उसे पृथ्वी में गाड़ २ कर थक गये। यह भी यहां पर गड़ी दुख पाती हुई सब अमीरों को वश में कर अपने पीछे २ फिराता रहती है; परन्तु पर्वतसिंह का यह चालाक पुत्र इस (लक्ष्मी) के प्रपंच में नहीं आता।

हाथी, जरीनवस्त्र एवं घोड़े आदि देकर यह युवक राजा; कवियों की इच्छापूर्ति करता हुआ उन्हें आश्वासन देता रहता है। इस की समता रखने वाले राजाओं को तो इस लक्ष्मी ने मोहिनी मंत्र से मुग्ध कर चक्कर दे दिया; परन्तु यह (राठौड़ राज) चक्कर में न आकर) विशेष प्रसन्न चित्त से कोश लुटाने का खेल रचता रहता है।

कितने ही कृपण इस लक्ष्मी को गले में डालने के 'तावीज़' समान समझकर ताले में बंद कर रखते हैं एवं बार २ ताला खोलकर उसे देखते और सँभालते रहते हैं; परन्तु इस टेढ़ी पगड़ी बांधने वाले वीरने उमंग में आकर अक्षय खजाने खोल रखे हैं। उदारता के वशीभूत हो यह ! खुले चौगान में हमेशा लुटाता रहता है।

यह राठौड़ राजा जिधर सुधा-दृष्टि डाल देता है, उधर इच्छुकों की अभिलाषा पूरी हो जाती है। इसके हाथोंने अपार जोश होने से एवं मतह दान देने के कारण शोभा प्राप्त करली है। चौहान राजा वीसल देव ने बीस करोड़ की सम्पत्ति जमीन में गाड़कर नष्ट कर दी; इस वीर ने तो प्रसन्न होकर लक्ष्मी को वितरित कर दिया।

महाराजा बलवन्तसिंह (रतलाम)

—: गीत ४५ :—

की कहणो नृपत ऊधरा करगां,
समझण रुपग गुणा सवाद ।
ओठम जग बलुवंत आप रो,
अघलो जस कीते अथमाद ॥ १ ॥

चितरा मिलंद उदारण चोजां,
झोकां माझां संघ झड़ ।
जस वालो गरवत पण जोतां,
प्रथवी वालो तुच्छ पड़ ॥ २ ॥

सासत पर-वत सिंघ सवाई,
पाणा आसत जोधपुरा ।
सुसबद रो परकर दीठा सुज,
धज ग्रंथी सांकड़ी धरा ॥ ३ ॥

पो हो दत वल वधीयो चहुँ पासे,
दूजा केहर दसूं दस ।
मही पचास कोड़ (ब) हूँ महपत,
जोजव जोजन वधे जस ॥ ४ ॥

(रच० अज्ञात)

अर्थ:— हे नरेश्वर बलवन्तसिंह ! तेरे दान देने को उठे हुए हाथों के विषय में क्या कहा जाय। तू कविता के रस को जानने

वाला है अतः तू संसार का आश्रय रूपी कहा जाता है एवं तेरा यश इतना फैला हुआ है कि पृथ्वी पर समा नहीं सकता ॥ १ ॥

उदारता बनायी रखने के लिए तू उच्चमन से झूमता हुआ दान वर्षा करता रहता है, तेरे महान् यश के सामने पृथ्वी के भाग तुच्छ नज़र आते हैं ॥ २ ॥

शासन-संचालन में हे जोधा के वंशज! ध्वज-धारी तू सवाया पर्वतसिंह है। तेरे हाथों की सभी आशा रखते हैं। तेरे यश का परकोटा इतना भारी है कि उसके सामने पृथ्वी तुच्छ दिखाई देती है ॥ ३ ॥

हे दूसरे ही केशरीसिंह! तेरी दान-शक्ति इतनी वृद्धि पर है कि पृथ्वी के पचास करोड़ के घेरे में भी तेरा यश समा नहीं पाता। यह तो प्रतिदिन योजन योजन बढ़ता ही जाता है ॥ ४ ॥

महाराजा बलवन्तसिंह (रतलाम)

—: गीत ४६ :—

डाकर भर धसलां कुरंग उडाणक,
प्रथी बखाणक पेले पार।
सुलटो वागां झपट सुचाणक,
धज माणक बलवंत चत्र धार ॥१॥

कदमां छेक दपट जम कलका,
वलफ स कर नँद जलका तास।
पलट फरव दुरपण दुत पलका,
बीजलका भलका बरदास ॥२॥

चटपट समट वरत नट चाकत,
ऊलट पलट झट हाकत ईख ।
पहवे दुपट ऊपट नभ वटका,
साकुर सद गुटका सारीख ॥३॥

खेलत लियो दुवागां खोल र,
कूद अलोलर कीजी ।
तलफे गयो पटी पग तोलर,
डोलर मचक दरीजी ॥४॥

जमत नरत कुलटा छद झटकी,
लाह उछर की आडी लीक ।
झड़क पांव पटकी झंपा जद,
अत (ह) वर नटकी आरीक ॥५॥

खग घावां नह पूगे खड़तां,
ले टक छोह लखाई ।
दीधी डोर गुडी दो-दोखी,
दारू आग दखाई ॥६॥

(रच० दधिवाड़िया देवाजी)

अर्थः—यशवन्तसिंह के चित्त में स्थान पाने वाला यह माणक नामक अश्व छलांगे मार कर हिरणों तक पहुँचने वाला है। समुद्र के दूसरे तट (विदेश) तक इसकी प्रशंसा होती है। यह रास के काबू में रहने वाला और सिचाण (बाज की तरह का एक पक्षी) की तरह झपटने वाला है ॥ १ ॥

कूदने में यह घोड़ा मानों मशीन से बनाया गया हो, जल से उत्पन्न मच्छ की तरह तड़ फड़ाता है। उलटा मुलटा दौड़ने में मानों कांच का प्रतिबिम्ब हो या बिजली चमकी हो।

रस्सी पर चढ़े हुए नट की तरह यह घोड़ा अपने अंगों को बना कर उलटा मुलटा चलने वाला, ऊबड़ खाबड़ जमीन को भी यह बादल के टुकड़े की तरह पार करने वाला तथा सिद्धों द्वारा बनाई हुई गुटिका (जिसे मुख में रखने से जहाँ चाहे उड़ कर चला जाता है) उसी प्रकार उड़ने वाला है।

मस्ती करते हुए की लगाम में लगी हुई रस्सी को खोलते ही बेकाबू होकर कूदता एवं पैरों पर तुल कर इस प्रकार दौड़ता हुआ दिखाई देता मानों भूला चल पड़ा हो।

कुलटा के समान नृत्य करता हुआ यह घोड़ा इस प्रकार दौड़ता है, मानों लकीर खींच दी गई हो और पैर पटक कर इस प्रकार झपटता है, मानों परदे की ओट से एक दम नट निकला हो।

पक्षी उड़कर भी इस तक नहीं पहुँच सकते। इसे एक नजर से देखने पर मनुष्य प्रसन्न हो जाता है। यह इस प्रकार बढ़ता है, मानों पतंग को दुगुनी डोर दी हो, या बारूद में आग लगा दी हो।

राठोड़ बिहारीदास (मनोत)

—: गीत ४७ :—

खिखे घोम धूंवा रवण धरा पुड़ि धूजिया,
कड़े चड़िया कटक ऊकटा काट।

कटे घोड़ा सुहड़ हुई आरिण विकट,
बिहारी पांतरै केम कुलवाट ॥१॥
धार रव वाजि अंधार आतस धुवे,
चालिगा कारिमा धरम चूकौ ।
महिर हरि हुवा सव दीह मंगल मरण,
मांन रै आदि रहसु नहँ मूकौ ॥२॥
किलँव दल आविय्यै कान्हि हुबो जिकूं,
नवसहस दिमौ कूंपा निहालूं ।
विघन ऊछाह बाधावि लीधौ वधै,
कुल तणा झाटकै पंथ कालूं ॥३॥
अंत जीतौ कमँध खेम हर आमरण,
कलहि पूगौ जितौ रिमां कसियौ ।
पाट छलि ऊधरै बंस विरदां प्रगट,
वरे अछरां सुरांथानि वसियौ ॥४॥

(रच०- अज्ञात)

अर्थः—(युद्ध क्षेत्र में) आग्नेयास्त्रों (तोपों आदि) से धूम छा गया, पृथ्वी काँपने लगी, एवं शत्रुसेना पीछे पड़कर अकाट्य वीरों एवं घोड़ों को काटने लगी। ऐसा भयंकर युद्ध छिड़ने पर भी वीर विहारीदास, अपने कुल-मार्ग को कैसे छोड़ सकता था ? (वह युद्ध में डटा ही रहा)।

जब तलवारों की खनखनाहट एवं आग्नेयास्त्रों के धूम से अंधेरा छा गया, तब कायर धर्मच्युत होकरयुद्ध-भूमि से चलते बने; परन्तु मानसिंह के पुत्र (विहारीदास) ने यह कहते हुए कि ईश्वर

कृपा से युद्ध—दिवस सबों के लिये मंगल प्रद है,—क्षत्रियों के आदि मार्ग को नहीं छोड़ा।

यवन-सेना को आती हुई देखकर वीर (बिहारीदास),—"मैं इसे कल नष्ट कर दूंगा, जिससे मरु प्रदेश तथा कूम्पा के वंशज प्रसन्न हो जायेंगे"—कहता हुआ आगे बढ़ा और विपत्ति का सम्मान करते हुए कुलमार्ग पर कदम देकर तलवार चलाई।

(इस प्रकार) वह कुलभूषण खेमा का पुत्र (या वंशज), अन्त में विजयी कहलाया। जिन दुश्मनोंने उस वीर से कसकर युद्ध किया, उनसे वह भिड़ा और बाद में राज्यासन का रक्षक वह वीर, अपने वंश-विरुदों की रक्षा करता एवं प्रसिद्धि पाता हुआ अप्सराओं का वरण कर स्वर्ग में रहने लगा।

राजा विठलदास

—: गीत ४८ :—

दली दल् मार अपार सुजां दिठि,
राव घणा दाहिणे रहे।
भलिम रथ पूरियो भलाई,
वामी धर वनेत वहे ॥१॥

सुत गोपाल् न पूगा समवड़,
साहजिहां गल् सबल् सोहो।
पाण करे सारा यक पासे,
पासे यक अजमेर पोहो ॥२॥

हाकणहार सरीखो होवे,
उतरीतां चढ़तां अटक ।
बलिभरियो गजे यक बाजू,
कलि रहियो सारो कटक ॥३॥

हिन्दूराय निबाहि हिन्दुवा,
पाहि गाहि उजबकां परे ।
ताणि खँधार लेगयो ताई,
आणि पाणि मेलियो उरे ॥४॥

(रच०- भादा बिहारीदास)

अर्थः—शाही सेनारूपी अपारभार से लदाहुआ जो सुन्दर रथ है, उसके जुए के दाहिनो ओर जूते हुए कितने ही राजा-गण हैं; परन्तु हे धनुर्धर वीर ! भलापन एक तुझमें ही है, जो तू उस रथ के बायें ओर जुत कर उसे (रथ को) आगे बढ़ा रहा है ।

शाहजहाँ की सेना के उस भार को अन्य सब प्रबल राजा-गण नहीं ढो सके और न तेरी समानता ही कर सके । जब रथ के एक ओर होकर सब जुते और बल करने लगे; तब हे गोपालसिंह के सुपुत्र ! अजमेर प्रान्त के निवासी ! अकेले तूने ही दूसरी ओर जुत कर बल प्रदर्शित किया ।

अटक तक जाने आने में जब वह सैन्य भार से लदा हुआ रथ दलदल (युद्ध-आपत्ति) में फँस गया, तब तूने उसके एक ओर जुत कर बलिष्ठ वृषभ एवं रथ-वाहक दोनों का काम किया ।

हे हिंदू-नरेश ! तूने हिन्दुत्व का पालन करते हुए उजबकदेशीय वीरों को कुचल कर शाही सेना को कंधार तक लेगया और सकुशल पुनः लौटा लाया ।

भगवानदास राठौड़:— (बाघोत, जैताउत)

—: गीत ८६ :—

भिड़णि जेम भगवांन असमांन अड़िये भ्रिगुट,
मार धरि भुजे गड सनड मेलै ।
दलां रा तिके रखपाल न्याइ दाखिजै,
महरि वधि मदा हूँ साग मेलै ॥१॥

अभिनमा प्रिथीमल जिही धरिये अघणि,
आवलां दलां वधि खल उथालै ।
भुजै बीड़ो तिके वहसि मार्गं मलां,
भूक मर आवगो सीम भालै ॥२॥

जंगि जूपै धमल आध लागां जिही,
जिके थरि लाख तिल मात जोवै ।
दलां मिरदार ताद मलां कीजै दुभल,
हुवंतां दलां दल थंभ होवै ॥३॥

हेड़वे थाट अवियाट जैता हरे,
मारि के(.........)मरण संसारि सीधौ ।
वाघरै रांम रा मीढ तेही वधै,
कमंधि जुधि रमायण वियो कीधौ ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ:—जो कोई वीर (युद्ध में) भिड़े तो उसे भगवानदास की तरह भिड़ना चाहिये, जिसने युद्ध समय अपना मस्तक आसमान से

जा लगाया और युद्ध भार को अपनी भुजाओं पर उठाते हुए दुर्ग का मजग वीरों सहित ध्वंस कर दिया। सच है, दल-रक्षक वही कहा जा सकता है, जो आगे बढ़कर योद्धाओं से शस्त्र मिलाता है।

नये पृथ्वीमल के योग्य वही वीर कहा जा सकता है, जो स्वामी की अनुपस्थिति में भी विपरीत (विरोधी) सेनाओं को नष्ट कर छिन्न भिन्न कर देता है तथा युद्ध के लिये प्रसन्न चित्त ताम्बूल (बीड़ी) ग्रहण कर युद्ध में भिड़ता हुआ साथियों से पृथक् ही अपना मस्तक (शिव को) अर्पित कर देता है।

वही भयानक वीर सेना का सरदार कहा जा सकता है, जो योद्धाओं से वृषभ के समान टक्कर लेता हुआ लाखों शत्रुओं को (भी) तिल सदृश समझता है तथा सेनाओं के भिड़जाने पर अपने पक्ष की सेना का स्तंभ बन जाता है।

जैता के प्रसिद्ध वशज एवं बाघा के पुत्र वीर राठौड़ (भगवानदास) ने इसी (उक्त) प्रकार से शत्रु समूह को नष्ट कर दिया और महान् वीर के समान मर कर संसार में श्रेष्ठ कहाते हुए रामचन्द्र के समान नई रामायण रच दी।

राठौड़ भगवानदास-(दयालदासोत एवं कर्मसिंहोत)

—: गीत ५० :—

भगवांन जिही वे हथियै भालो,
　　अरियण घड़ मोहडे अनड़।
　　　　आहंचि जिम तो राणे जुधि आवै,
　　　　　　भलां कहावै महा भड़॥१॥

सुतन दयाल जेम चढ़ि मागे,
जिणी आगे जीता रण जंग ।
भागे दलि पाले तण मांडे,
भीड़ तके कहिजे अणभंग ॥२॥

रूमवत जिम अमिनमें कणमणी,
नीग्रहि कमलि चढ़ने नूर ।
औरे सु तरा मांमहे आली ए,
मांचा तिके घटी जे सूर ॥३॥

हदा हूंगा पहियां हाथू के,
चावो जल मुरधरा चढ़े ।
कंदल वरे ऊपरे कुलकित,
घर रहियां जांणियां वड़े ॥४॥

(रच० —अज्ञात)

अर्थः—दोनों हाथों में भाला लिये हुए वीर भगवानदास ने एकत्रचाय होकर शत्रु-सेना को मोड़ दिया और युद्ध-भूमि में इस प्रकार आया जैसे तोरण की वन्दना करने के लिये दुलहा आया हो। (वास्तव में) ऐसे वीर ही महान् वीर कहे जाते हैं।

दयालदास के पुत्र (भगवानदास) ने पहले कई बार युद्ध में विजय प्राप्त की थी। वह शत्रुओं के सामने चढ़ कर दिल्ली की सेना को भगाता हुआ स्वयं नष्ट हो गया। कवि कहता है—ऐसे भयानक क्षत्रिय वीर ही अभंग वीर कहे जा सकते हैं।

नूतन कर्मसिंह राठौड़ वीर ने युद्ध रच कर अपने स्वयं के मुख को कान्तिमान कर दिया और शस्त्रों की अणियों के सामने अपने अंगों को बढ़ाता रहा। ऐसे क्षत्रिय ही सच्चे वीर कहे जाते हैं।

हदा (सरदार या शार्दूलसिंह) का वशज (भगवानदास) कई वार कराघात होने से धराशायी हुआ, जिससे नरु प्रदेश कान्तिमान हो गया। (इस प्रकार) अपने कुल-कर्तव्य का पालन करता हुआ वह दुलहा रूप वीर युद्ध में (अप्सरा का) वरण कर (साथियों से) बिछुड़ गया और बराती रूप अन्य साथी वापस लौट गये।

राठौड़ भोपतसिंह (गोपालदासोत, चाँपावत)

—: गीत ५१ :—

मुहरि साहि वाधारि सजि सारि वेढी मणे,
जाड़ अरिथाट अविघाट जाडौ।
उवैलण दलां निज खलां भांजण अभंग,
ओरियौ खैग रणतालि आडौ ॥१॥

निव दलां अणी जुधि घणी मोह मौहरै निवड़,
छरा ऊपाड़ि वेहथि छड़ालै।
कहै चड़ियां भड़ां घड़ां रोलण कमध,
कहरि असि मेलियौ थाटि कालै ॥२॥

विसरि फौजां उभै वीर हक वापरे,
जोध ज्यौं कीध नहै किन्ही जोड़ौ।
पालरै यालि भूपालि बाहां पलवि,
घातियौ कालि घमचालि घोड़ौ ॥३॥

मुहियड़ दलां सिंघ सुतन गोपाल् मल,
भूजे भूपाल् जुध भार भलिया ।
वरे सुरतांण घड़ करे माझी विमवि,
वींद रिणि रहे जांनैत वलिया ॥४॥

(रचः—अज्ञात)

अर्थः—मार काट करने वाले प्रचंडकाय वीर (भूपतसिंह) ने सशस्त्रसज्जित हो शाही सेना के हरावल के अभंग शत्रुओं का नाश करने एवं स्वपक्षीय सेना को बचाने के लिये सवेग घोड़ा बढ़ाया और आक्रमण करने लगा ।

भाला ग्रहण करने वाले उस उन्मत्त राठौड़ वीर ने अपने स्वामी की सेना के हरावल में होकर यवन-सेना के हरावल में टक्कर ली और पीछा करने वाले शत्रु-समूह पर अपनी विघ्नकारी तलवार चलाते हुए हलचल मचादी ।

जब प्रलंबबाहु भूपतसिंह जो पाला का वंशज था, ने घमासान युद्ध में यमस्वरूप हो अपना घोड़ा आगे बढ़ाया, तब दोनों सेनायें (एक दूसरे की ओर) बढ़ने लगी एवं वीर हुंकार करने लगे इस समय इस राठौड़ वीर की समानता दोनों सेनाओं में कोई भी नहीं करसका ।

(इस प्रकार) गोपालदास के पुत्र भूपतसिंह ने सेना के अग्रभाग में सिंह-सदृश दिखाई देते हुए अपनी भुजाओं पर युद्ध-भार और शाही (महायुद्ध करके बादशाह की सेना (दुलहन) का वरण (काबू में) किया एवं दुलहारूपी यह वीर रणशय्या पर सोगया । शेष बराती रूपी साथी लौट गये ।

———

राठौड़ भावसिंह (कूँपावत)

—: गीत ४२ :—

भड़ांरूप चाढ़ण घड़ा वेहड़ां भावसिंघ,
कलह रा थंभ न्याहैं कहावै।
सदालग चाड जोधां तणी संकड़ै,
आवियौ जेम रिणमाल आवै ॥१॥

कान्हरौ कहैं सुरितांण साम्हा कथन,
प्रथम कीजै जिकूं करौ पाछै।
असिमरां म्हांहरा पगां सुरधर अगै,
अमर गौ हसम मो परै आछै ॥२॥

तवे खगधार सिरि राह खत्रियां तणौ,
वहसि खेमाल हर ऊभियै बाह।
पाट सू मेलतौ भीछ पतसाह रा,
पाट ऊखेल तौ प्रिसण पतसाह ॥३॥

सामि ध्रम हाम संग्राम चाढ़ै सिरै,
सूर गुर अखाड़ौ वडो सोधौ।
हेड़वे दलां दल थंभ कूंपा हरै,
करै धर थंभ सुज मरण कीधौ ॥४॥

(रच०-अज्ञात)

अर्थः—वीरों की शोभा बढ़ाने वाला एवं युद्ध-समय दृढ़ स्तंभ स्वरूप होकर सेनाओं को नष्ट करने वाला वीर भावसिंह, जोधा के वंशजों में आपत्ति पड़ने पर सदा की भाँति चढ़ाई कर रणमाल की तरह आ पहुँचा।

कान्हा का पुत्र (भावसिंह) बादशाह से कहने लगा, कि जो तुम्हें कत्ल करना हो उसे आरंभ कर के दिखाइये (हम डरने वाले नहीं हैं)। हमारी तलवार के बल पर ही सारा मारवाड़ स्थिर है और अमरसिंह का गौरव भी हम पर ही निर्भर है।

यह कहकर उस खेमा के पौत्र (या वंशज) ने हँसते हुए क्षात्रमार्ग पर अग्रसर हो दोनों हाथों से तलवार उठाई और शाह के भयंकर वीरों को पृथ्वीपर गिराते हुए, तख्त छुड़ा कर शत्रु बादशाह को भगा दिया।

स्वामिधर्म-पालन तथा स्वामी (राठौड़ अमरसिंह) के द्वारा आरंभ किये युद्ध को श्रेष्ठता देते हुए उस वीर-गुरु के समान एवं कूंपा के दलस्तंभरूपी वीर वंशज ने सेना को विदीर्ण कर पृथ्वीपर विजय स्तंभ स्थापित कर श्रेष्ठ मृत्यु प्राप्त की।

राठौड़ भावसिंह (कान्हात. कूँपावत)

—: गीत ५३ :—

आचारि अघट-तरुवारि असकित,
मलां भलौ चढियौ मरखि।
कूँपा वडिम अभिनमौ कूँपौ,
भाव्रमींघ दाखै भुवखि ॥१॥
अभंग तियागि खागि अतुली बल,
परियां रा धागैधै पण।

राठौड़ मनोहरदास
(उदैभाणोत एवं भारमलोत)

—: गीत ५६ :—

जीवत सिंभ जोध जैत्र हथ जुधि,
सारे अरि भांजणा सुज।
पूजै तिणि देसौत वडा पह,
भलां मनोहर तूझ भुज ॥१॥

आखाड़े जीपणा अणकल,
भुज लगि सत्रहर मछर भर।
बाल धमल भूपाल विरद घण,
करै सु अरघै तूझ कर ॥२॥

सांचौ देख भांण समो भ्रम,
भुवणि दिखालै एणि मति।
पाड़े खलां कमा दूजा पिंडि,
पाड़ि ऊपाड़ियौ विरद पति ॥३॥

(रच०— अज्ञात)

अर्थः— हे मनोहरदास ! तू जीवित शुंभ दानव-समान है। तेरे हाथ युद्ध में विजयी हैं। तू अच्छे शस्त्रों से शत्रुओं को नष्ट कर देता है। इसीलिये जितने भी बड़े २ देशाधिप हैं वे तेरी भुजाओं की पूजा करते हैं।

हे वृषभ सदृशवीर के सुपुत्र नरेश ! तू युद्धरूपी अखाड़े में निष्कलंक वीरों को जीतने वाला और मस्ती में आकर अपनी भुजाओं

ह बलपर शत्रुओं से भिड़ने वाला है। इसीलिये विशेष विरुदधारी राजागण भी अपने हाथों से तेरे हाथों को पूजते हैं।

हे वीर तू दीखने में माण (व्यक्ति विशेष) सदृश था और उसी के अनुरूप संसार के समक्ष बल-प्रदर्शन भी किया शरीर से तू कमा (वीर विशेष) के समान होकर शत्रुओं को धराशायी करता हुआ स्वयं धराशायी हुआ और अपने को विरुदों से अलंकृत किया।

राठौड़ मनोहरदासः– (बीठलदासोत)

—: गीत ४७ :—

वडम वीठियो मनोहर वडा समहर वरण,
करग ग्रं राड़ हरां सुहर नामों करण।
अतुल बल् विरद दूदा तणा आवरण,
अणी रांणा दल् भ्रुरधरा आभरण ॥१॥
इला आगल् सबल् खलां अध्रियामणौ,
धाड़ धण दल् मिल् तेम सूरत धणौ।
ऊमियाँ नाहेर पर–चांड कजि आवणौ,
तूंग अणभंग जग जेठ बीठल तणौ ॥२॥
हेदिजे गैधदा पूणिजै बैर हर,
हालिजै खत्रीध्रम तणा राठौड़ हर।
धणी धुजि मेड़ता धंम मेवाड़ धर,
हाथ मारत्य जै पाव जैमाल हर ॥३॥

गह चडे द्वारि जस गेंयल गड़गड़,
उवर फाटै सुणे अरी धड़ ऊजड़ै।
पेखि आचार इलि राउ विसमै पड़ै,
चढ़ै दिन पूरि तिम भरण मोटा चढ़ै ॥४॥

(रच०- अज्ञात)

अर्थ:— हे दूदा-वंश के लज्जा-रक्षक वीर मनोहर तू बड़प्पन रखने वाला (स्वाभिमानी). बड़े २ युद्धों में विजय पाने वाला, खड्ग-धारी राजवंशजों में से आगे होकर युद्ध में यशस्वी होने वाला, महा-बलशाली, महाराणा की सेना के अग्रभाग में रहने वाला तथा मरु-प्रदेश का आभूषण है।

हे विट्ठलदास के वंशज (या पुत्र) ! तू पृथ्वी की रक्षा के लिये अर्गला स्वरूप है, शत्रुओं पर मेघ की तरह घुमड़ने वाला, सेना में विशेष शस्त्राघात होने पर भी वीरता रखने वाला, दूसरों पर आई हुई आपत्ति को टालने वाला, वीर समूह में अभंग माना जाने वाला और बड़ा कहाने वाला भी तू ही है।

हे जयमल राठौड़ के वंशज ! तू गजसेना को विदीर्ण करने वाला, शत्रुओं को हिला देने वाला, क्षात्रधर्म पर चलने वाला और युद्ध में पार्थ के समान (प्रलंब) बाहुवाला है। (इसी प्रकार) मेड़ता के स्वामी के लिये ध्वजारूप एवं मेवाड़ भूमि का स्तंभ (आधार) भी तू ही है।

तुझे देखकर तेरे द्वार को गर्व होता है, तेरे यश के नगारों की गड़गड़ाहट सुनकर शत्रुओं के हृदय विदीर्ण हो जाते हैं और उनके शरीर नष्ट होते दिखाई देते हैं। तेरे रहन-सहन को देखकर अन्य राजा गण चकित हो जाते हैं। जैसे २ तेरा भाग्योदय होता है वैसे २ तू बड़ों २ का पोषण करता रहता है।

राठौड़ महेशदास (दलपतोत, राजावत)

—: गीत ४८ :—

मोटा क्रित करण मालहर मंडण,
चै चीरति मोटिम लगु घेस ।
कुलि मोटै दीपै नवकोटी,
मौटा व्रिद धारियै महेस ॥१॥
ऊँची तंण अचड़ ऊधारण,
घाव वाहण सूर तन घणो ।
दलां सनाह चौंड रज दूजौं,
तूंग अभंग दल साह तणौं ॥२॥
खागे वड़ा प्रवाड़ा खाटण,
खेड़ ऊजालण खत्री सखोध ।
जैत जुवार वडा छल जागण,
जोधां सोह चढावण जोध ॥३॥
कर सह विधी सयल सिरि कीधा,
साराहै तै मनव सुरु,
पाट ऊधोर प्रगट पनपाटां,
गंग कलोधर मझि गुरु

वीरता के मार्ग पर विचरण करता है। तू बड़े कुल में देदीप्यमान होकर बड़े २ विरुद प्राप्त करता है।

हे दूसरे ही चूँडा! तू (दूसरे पर) (विपत्ति आने पर हठ पूर्वक (उन्हें) बचाने, विशेष वीरता पूर्वक शत्रुओं पर) आघात करने, सेना के लिए कवच के समान और शाह की सेना में उत्तुंगकाय अभगवीर माना जाने वाला है।

हे क्षत्रिय योद्धा! तलवार के बल पर तू बड़ी ख्याति प्राप्त करने वाला, युद्ध कर अपने पूर्वजों के स्थान को उज्ज्वल करने (पवित्र करने) वाला है। तू विजयी, वन्दनीय और जोधा के वंशजों की शोभा बढ़ाने वाला है।

हे गांगा की कला को धारण करने वाले वीर! तू तो क्षत्रियों का गुरु-तुल्य है। तूने सब के सिर पर अहसान कर दिया। अतः प्रारम्भ से ही सब तेरा प्रशंसा करते हैं। तू अपने स्वामी के सिंहासन का रक्षक है, यह बात बादशाहों तक को ज्ञात है।

महेशदास (सूरजमलोत, चांपावत)

—: गीत ५६ :—

चढियौ परमाणि अभिनमां चांपा,
निज ए कथ आदि लग नरेस।
माथै छत्र धरिजै राव मारु,
मोटा मोटिम चढै महेस ॥१॥
जैत जुवार दिली जोधाणे,
मढ़ मानाखो मछर मर।

थापे सुरिजमाल थॅं गोभव,
बड़ां बड़ाई थोर बर ॥२॥
दिढ धर-थंभ जैतमल दूजा,
पाह भगत संनाह पह ।
पै जिम प्रभत ऊजला प्रिथमी,
सत पुरुसां वाधै सगह ॥३॥
कुल अजुवाल वडाला कमधज,
सुरगुरु अरधियै सुज ।
मुरधर तणा कलोधर रिणमल,
मर धरियै सोहिया भुज ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे राठौड़ वीर महेशदास ! तू नूतन चांपा है । राजवंशजों के लिये कहाजाता है, कि छत्रधारण करना एवं बड़ा कहाना उसी के लिये सार्थक है जो (वास्तव में) बड़प्पन रखता हो, और तुझ पर ये लक्षण फबते हैं ।

हे सूरजमल के आत्मज ! तू श्रेष्ठ वीर एवं प्रमत्त योद्धा है । इसीलिए दिल्ली तथा जोधपुर के शासक तुझे विजयी वीर मानकर तेरा सम्मान करते हैं । वैसे तू स्वयं भी अपने पूर्वजों के समान ही बड़प्पन लिये हुए है ।

हे वीर ! तू दूसरा ही जैतमल है । इस पृथ्वी का दृढ़स्तंभ, राज्य सिंहासन का भक्त एवं स्वामी के लिये कवचरूप तू ही है । तेरे सदृश प्रभुतावाले वीर ही इस पृथ्वी पर उज्ज्वल कहे जाते हैं और सर्वों के समक्ष अपने सत्पुरुषाओं की ख्याति में वृद्धि करते रहते हैं ।

महाराजा मानसिंह (जोधपुर)

—: गीत ६१ :—

तेजालां सैंग अबैं वड त्यागी, इम मदवाला उमग उर ।
कमधां नाथ बंक गुर करतां, गढपतियां चो थियो गुरु ॥ १ ॥
सिबका जवहर गांम समापे, करतै उठण रा कुरब ।
सुतन गुमांन हुए कवि चौ सिष्य, सिष्य कीधा भूपाल सब ॥ २ ॥
देख दिखाते गजन दूसरा, पह आचारां तणां प्रमांण ।
दूथी नूं श्रीफल तैं देते, पहां थियां सिर दीधा पांण ॥ ३ ॥
चूंडाहरा तुहारा चेला, वंस छत्तीस वधतै वांन ।
सूरां गुर गाढां गुर सबदी, महाराजां रावां गुर मांन ॥ ४ ॥

(रच०— कविराज बांकीदास)

अर्थः— हे राठौड़ नरेश उदारता के साथ उमग में आकर तूने वेगवान घोड़े तथा मतवाले हाथी देकर मुझ बांकीदास को अपना गुरु बनाया और तू सब दुर्गाधिपों का गुरु बन गया ।

हे गुमानसिंह के पुत्र ! तूने मुझ कवि को पालकी; जवाहिर, ग्राम और ताजीम दी तथा मेरा शिष्य बनकर तूने सब राजाओं को अपना शिष्य बना लिया ।

हे दूसरे ही गजसिंह ! तूने राजाओं के व्यावहारिक ज्ञान को समझा और दूसरों को भी समझाया । मुझे गुरु मान नारियल भेंट में दिया । तूने अन्य राजाओं के मस्तक पर हाथ रख दिया (उनका गुरु बन गया) ।

हे चूंडा के वंशज मानसिंह ! छत्तीस ही वंश के क्षत्रिय तेरे शिष्य बने, उनकी शोभा वृद्धि पर है । तू दृढ वीरों, कविता रचने वालों, राजाओं तथा महाराजाओं का गुरु-तुल्य है ।

राठौड़ रतनसिंह (जोधा)

—: गीत ६२ :—

वारण झरड़ीयो दरबार बिचाले,
कायरां पड़े कगारी ।
बागा—हरे आगरे वाहो,
कँवरपणोज कटारी ॥ १ ॥

हूँकल पोलि उराड़ियो हाथी,
निछटी भीड़ि निराली ।
रतन पहाड़ तणे सिर रोपी,
धूहड़िया धाराली ॥ २ ॥

पाचूं सह ग्रहंता पोखे,
साई दरगाह सोधे ।
सिभुर तणो भूसुंडे सुजड़ो,
जडी अभनमे जोधे ॥ ३ ॥

देम महेम अँजसिया दोन्यों,
गेद खत्री भ्रम रीधो ।
बोहिज गयँद बखाणे आंणे,
डांणे लागे दीधो ॥ ४ ॥

(रच०—दुरसा आढ़ा)

अर्थः—एक समय जब आगरा में शाही दरबार हो रहा था, तब एक हाथी मस्ती में आगया । उस समय कायरों पर विपत्ति आई हुई देख बाधा के पुत्र (या वंशज) ने युवराजपन में ही उस (प्रमत्त) हाथी पर कटारी का वार कर दिया ।

जब चिग्घाड़ता हुआ पर्वत सदृश (भीम काय) हाथी शाही द्वार पर झपटा, तब रत्नसिंह राठौड़ ने उस (हाथी) के मस्तक पर कटारी भौंक दी।

जब काजी मुल्ला आदि भाग कर मस्जिद की आड़ लेने लगे, तब दूसरे ही जोधा-सदृश वीर (रत्नसिंह) ने उस प्रमत्त हाथी के भ्रसुंड पर कटारी चला दी।

इस प्रकार वीर रत्नसिंह के कटारी का वार करने पर देश और मृतवीर महेशदास जो उस (रत्नसिंह) का पूर्वज था, को प्रसन्नता हुई एवं बादशाह ने उसके क्षत्रियत्व पर प्रसन्न होकर प्रशंसा करते हुए उस प्रमत्त हाथी को उसे दे दिया।

राठौड़ रत्नसिंह (गजसिंहोत, कूँपावत)

गीत–६३

मेलण रणताल अभिनमौ मांडण,
करण अचड़ ऊभियै करि।
रतन अरेह समोभ्रम गजड़,
हुवे समंद्र काइ करन-हरि ॥ १ ॥
वधे वरंत फौज वीरारसि,
त्रिजड़ां वलि साहस अतुलि।
नग नीपजै अमोलिक नावै,
कै गिखि कै राठौड़ कुलि ॥ २ ॥
सल खेगरण खगे खेड़ेचो,
खत्रियां—गुरु खत्रवाट खगै।

महि सिणगार मांनिजे महियलि,
हरकासिव खेमाल-हरां ॥ ३ ॥
धन तें मन मडलीक कलोधर,
मोड़ण गै-घड़ निभै—मण ।
वडे सुजसि रखपाल वडालां,
राइजादां गज्जैं रयण ॥ ४ ॥

(रच०—बारहठ नरहरदास)

अर्थ:—हे रत्नसिंह! तू लगातार वार करने मे नूतन माँडा (व्यक्ति विशेष) है। युद्ध के समय तेरे दोनों हाथ चलते हैं। राजसिंह के समान तेरे गुण असीम हैं। हे कर्ण के वंशज! गम्भीरता में समुद्र तेरी समानता नहीं कर सकता।

शत्रुओं से सामना करते समय तुझ मे वीर रस की वृद्धि हो जाती है। हे खड्गधारी बलवान! तेरा पराक्रम अतुलनीय है। तेरे जैसा अलौकिक मानव या तो ऋषि-कुल में या राठौड़ कुल में ही उत्पन्न होता है।

हे खेमा के वंशज राठोड़ वीर! तलवार से तू शत्रुओं को काट देता है। तेरा क्षात्रवट पक्का और तू क्षत्रियों का गुरु-तुल्य है। संसार तुझे पृथ्वी का शृंगार मानता है तथा सूर्य से तेरी तुलना की जाती है।

हे माँडा की कला को धारण करने वाले राज-वंशज रत्नसिंह! तेरा मन प्रशसनीय है। निर्भयता पूर्वक तू गज-सेना को भगा देता है। तेरा यश महान् और तू बड़ों का रक्षक है।

———

राठौड़ रामदास (मेड़तिया, चाँदाउत)

—: गीत ६५ :—

परा वीर दादौ जियै आप एकाधपति,
धरा रखपाल भूझै अधायाँ ।
ऊनगे असिमरे धरे छिवतो अरसि,
आवरे सामध्रमि राम आयाँ ॥ १ ॥
वडौ राठौड़ सुजि वडा जोवे विघन,
प्रथमि जग जेठ पूरौ प्रवाड़ै ।
दिजां छल देश छल तणा सुरित्यणा दल,
चंदरै हैड़िया हियै चाड़ै ॥ २ ॥
अभंग उपड़ाखियै रिदै धरियां अनँत,
नाखियां करे पाखां नत्रीठा ।
सींधुरां हैमरां नगां माथै समरि,
दुजड़ कर खिवतां सुरे दीठा ॥ ३ ॥
त्रिप ग्रहण मोखयण रमण आराण विचि,
मारकौ माझियां वखै मिलियौ ।
खलां करि खैंग रण अंत साखी अरण,
भांजि जामण मरण जोति मिलियौ ॥४॥

(रच०— अज्ञात)

अर्थः- रामदास यह कहता हुआ वढ़ा कि पहिले मेरा दादा वीरमदेव एक ही धरा-रक्षक नरेश्वर हुआ, जो उमड़ कर युद्ध करता रहा । उसी का पौत्र मैं स्वामी-धर्म को धारण करने वाला हूँ । उठी हुई

तवारों द्वारा पृथ्वी को आच्छादित करता हुआ मैं आगया हूँ। हे शुओं ! युद्ध के लिए सामने आजावो।

इसके पश्चात्. श्रेष्ठ वीरों में बड़े कहे जाने वाले, पहले से ही सार में विख्यात और द्विज एवं देश के रक्षक चांदा के पुत्र राठौड़र ने विपत्ति को सामने आया देखा। शाही सेना पर आक्रमण कर सने उसके हृदय को विदीर्ण कर दिया।

उस अभंग. उन्नत स्कंधधारी वीर ने हृदय में ईश्वर का ध्यान कया और अपने पाखरधारी घोड़ों को सवेग बढाया। युद्ध में हाथियों. ोड़ों एवं सैनिकों के मस्तक पर चमचमाती हुई उसकी तलवार को वताओं ने भी देखा।

रणस्थल में युद्ध—क्रीड़ा कर उसने बन्दी ब्राह्मणों को मुक्त करा देया। वह शत्रु-संहारक वीर. प्रमुख वीरों से भिड़ पडा और शत्रुओं को काट दिया, इसका साक्षी सूर्य है। वह वीर आवागमन से मुक्त होकर परम ज्योति में मिल गया।

राठौड़ रामसिंह

—: गीत ६४ :—

वदे राम वरियांम संमार रजपूत वट.
लोह पागार सुंडाहला लोध।
ऊरड़ां सामां अणी ऊपरे प्रिसण उर,
जड़े जमदाढ तूं अभिनमा जोध ॥१॥

कमा रा मोह अण-चीह भामी करां,
सूर तन घणा भोगे ती सराहे।

अर्थः – राठौड़ वीर रूपसिंह महान् मर्यादापालक एवं शाही सेना के अग्रभाग में रहने वाला है। विजय का भार इसीकी भुजाओं पर निर्भर है। धर्म का धुरा यही धारण करने वाला है। यह केशरीसिंह का पुत्र दूसरा ही केशरी होकर राठौड़ों के मस्तक की शोभा (सिरमौर) है।

इसका चढ़ आता हुआ अश्वारोही समूह आठवें समुद्र के समान है। यह जिस शत्रु-दल पर क्रुद्ध होता वह उस में डूब जाता है। इस पर चारों ओर से श्वेत चमर डुलते रहते और इस नरेश के मस्तक पर छत्र सुशोभित होता है।

भारमल के अंशधारी इस वीर में, स्तंभरूप होकर गिरते हुए आकाश को रोकने की शक्ति है। यह दिल्ली राज्य का रक्षक होकर युद्ध में महान शत्रुओं को नष्ट कर देता है। इसके यश के नक्कारे सदा बजते रहते हैं और प्रसिद्ध युद्ध करने वाले राजाओं के लक्षण इस पर फबते हैं।

इस दूसरे ही मालदेवका पंचतत्वमय पुतला पवित्र आचरणों वाला है। यह प्रह्लाद के समान ईश्वर की विशेष आराधना एवं पूजा करता रहता है। इसकी भुजाओं पर वंश-भार एवं ललाट पर यश का तिलक तथा मस्तक पर मेघाडंबर (छोटा छत्र) शोभा देता है।

राठौड़ रुकमांगद (करणोत, राजाउत)

—: गीत ६७ :—

मौजां घण महण भंग—हर मंडण,
　　ध्र धारण धरियै छत्र धौड़।
　　　　रावां वडां तणी रुकमांगद,
　　　　　　रीत उजालै राव राठौड़ ॥१॥

वासण धण सेन वैरागर,
बड़ा त्रिविधि डोहण घण घाउ।
सलखा सहि अभिनर्मा सकतां,
सोह चढ़ावै करन सुजाउ ॥२॥

अवि रच अतध अभंग अतुली बल,
वड खल वहण उवारण वात।
जोधां रिणमालां जग जेठी,
छल जागै चौंडा हर छात ॥३॥

सकता माल गंग वाधा मरू,
रह—रामण जोधा रयण।
दीठै तूं दीसै कुल दीपक
अभंग वडाला आचरण ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे भूहड़ क्षत्रिय राठौड़ रुकमांगद! तू गांगा के वंशजों की शोभा है। तेरी उमंगें तरंगित समुद्र के समान और विचार स्थिर हैं। तू राजाओं की रीति को पवित्र करने वाला है।

हे करण के पुत्र! तू राग रहित होकर विष्णु की उपासना करता और विशेष शस्त्राघात करके (शत्रुओं) की त्रिविध (गज, अश्व पैदल) सेनाओं को नष्ट कर देता है। तू नूतन शक्तिसिंह होकर सलखा के समस्त वंशजों की शोभा बढ़ा देता है।

हे चूँडा के वंशजों का छत्ररूपी वीर! तू सांसारिक राग पर अधिक मुग्ध न होने वाला, बड़े २ शत्रुओं को नष्ट कर अपने वचन

का धनी और अतुल बली है। जोधा एवं रणमल के वंशजों में तू बड़ा और रक्षा करने के लिए तत्पर है।

हे कुल-दीपक ! तू अपने पूर्वज शक्तिसिंह, मालदेव, गांगा, बाघा और रावण के समान हठी जोधा के समान अभंग वीर है। उन्हीं के समान तेरे उच्च आचरण (कर्तव्य) है।

राठौड़ विट्ठलदास (आशकरणोत, चाँदावत)

—: गीत ६८ :—

अवचीतैं दुयण पिता आहणियौ,
वाडिम जगड़-हरा धन वंश।
वेढक हाथि तुहारैं वीठल,
पग ऊपरि वलियाँ परि हस ॥१॥

खग वाहियौ इसौ खेहचा,
खल माथे ऊपाजिया खार।
आसा तणो वैर आसाउत,
पहर न लंघियो विरद पगार ॥२॥

कलह अचूक ढूकड़ै केवै,
केवी सिरि खिवियौ करग।
दुजड़ वाह वाखांण राह दुहुँ,
भाल सुजस चहुँ जुगां लग ॥३॥

सत्र सांकड़ै ऊघड़ै समहरि,
निजि घाइ पड़ै चड़ै कुल नीर।

वाल़ै वैर तो जिहीं वीठल,
वैर वराह कहाड़ौ वीर ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वीर विट्ठलदास ! अचानक शत्रु के आक्रमण करने पर तेरे पिता भी उससे भिड़ पड़े। अतः हे जगा के वंशज ! तुम्हारे इस उच्च वंश को धन्य है ! उसी प्रकार तेरे द्वारा काटे हुए शत्रु ने भी तेरे चरणों में अपने प्राणपखेरु को भेंट कर दिया।

हे आशकर्ण के पुत्र राठौड़ वीर ! शत्रु की थाह लेना वास्तव में यह विरुद तुझ पर ही फबता है, क्योंकि क्रुद्ध होकर तूने शत्रु के मस्तक पर खड्गाघात किया और अपने पिता आशकर्ण का वैर लेने में एक प्रहर की भी देरी नहीं की।

हे वीर ! तूने कपट रहित युद्ध कर शत्रु के सिर पर चमचमाती तलवार चलाई और उसे धराशायी कर दिया। अतः खड्ग चलाना और यश प्राप्त करना, ये दोनों लेख तेरे ललाट पर युग पर्यंत लिख दिए गए हैं।

हे विट्ठलदास ! शत्रु को रौंद कर तूने युद्ध को सफल बना दिया, परन्तु तू भी घायल होकर धराशायी हो गया, फिर भी तेरे जैसा बदला लेने वाला वीर ही वराहस्वरूप कहा जाता है।

राठौड़ विट्ठलदास (गोपालदासोत, चाँपावत)

—: गीत ६६ :—

बलि भरियौ राग पाणि वेडाग्रे,
धाड़ जीपण रणताल़ धणे।

वेढुक दल वडालो वीठल,
ताइ आगल नव कोटतणे ॥१॥
वहले कमलि वांधिए विरदे,
तूंग अगंजी पाल तण।
जैत जुआर दूसरा जैसो,
मुहियड़ थाटां निभै मण ॥२॥
पूठिवडै घातिए अवाड़,
रण डोहिए घणे राठौड़।
मुरधर धरा थंभ राउ–मारू,
मेर अजाद मयँक हर मौड़ ॥३॥
पर चाडां आई मुज पाधरि,
खग ऊँठी जागे रण जंग।
माझी माइ भवाड़ै महियलि,
ओ चांपौ ऊजलौ अभंग ॥४॥

(रच०–अज्ञात)

अर्थ—महान वीर विट्ठलदास उन्मत्त होकर बलपूर्वक विजय प्राप्त करता है। वह वीर सामना करने वाली सेना को नष्ट कर मरुप्रदेश के लिये अर्गला रूप बन जाता है।

यह पाला का पुत्र दूसरा ही जैसा (जयसिंह) है। यह (हमेशा) विशेष विरुदों से सुशोभित रहता है। वीर समूहों से यह अदम्य वीर वंदनीय है। यह वीर निर्भयता से सैन्य समूह का सामना करता रहता है।

यह चांदा के वंश का सिरमौड़ मरुदेशीय राठौड़ वीर अपनी पीठ पर महायश का भार लिये फिरता है (महा यशस्वी है)। युद्ध में यह असंख्य शत्रुओं को नष्ट कर देता है। यह वीर मरुभूमि के लिये स्तंभ रूप एवं मर्यादा का सुमेरु कहा जाता है।

यह चांपा का वंशज पवित्र एवं अभंग वीर है। संसार में यह बड़ा वीर माना जाता है। यह सहज में पराई आपत्ति को अपनी भुजाओं पर उठाकर युद्ध छेड़ बैठता है। यही वीर मुख्य शत्रुओं पर आघात कर उन्हें यत्र तत्र भगा देता है।

ठाकुर वीरमदेव राठोड़ (घाणेराव):—

—: गीत ७८ :—

गंभू ज्ञान में महीर रो प्रमाद भाग पायो संता,
जहांनवी नीर रो क सांपड़ेवो जन्न ।
डोरो व्रज कुंज रा समीर रो क आज दीठो,
वीरमदे हेलमे–हमीर रो वदन्न ॥ १ ॥

संपदा विहीण खीर—कन्यका संतोपियो क,
निमा भू मोखियो क सुधा सैं भरी नखत्त ।
गाजियो विसन्न रो सनेह पाम रोकियो क,
विजाइ किसन्न रो बिलोकियो वखत्त ॥ २ ॥

ग्रीपमंत हुओ सुरांराज रो भालवो गोम,
पणासी मुणेबो वेण वाज रो इलाप ।
ऊखड़ेवो महा काले दरीवां अनाज रोक,
मेड़तीया गरीवांनवाज रो मिलाप ॥ ३ ॥

भालियो प्रभाते रथ चक्रवाक भाण रो क,
पापखंड प्राण रो (क) पाखियो प्रचार।
तंतमार प्राण रा प्रयांण रो मेटियो ताप,
दूदां रा दीवाण रो क भेटियो दीदार ॥ ४ ॥

समवाद रिखीकेस पाधरो संभारियो क,
मिवा देण गाथ रो उचारियो सरस्स।
वीछड़ेवो साथ रो प्रमाद भू विचारियो क,
दूजा गोपीनाथ रो जुहारियो दरस्स ॥ ५ ॥

(रच०—मुरताणिया साहिबो)

अर्थः— कवि कहता है, कि जब मेरी वीरमदेव से भेंट हुई, तब ऐसा लगा मानों योगियों को परम ज्ञानी शिव का प्रसाद मिला हो गंगा के नीर में स्नान करने का सुअवसर मिला हो अथवा व्रजवन-निकुंज के पवन का स्पर्श हुआ हो या महादानी हेला-हमीर (व्यक्ति विशेष) के दर्शन हुए हों।

इस दूसरे ही किशनसिंह (वीरमदेव) के शासन समय का जब अवलोकन किया तब ऐसा लगा, मानों निर्धन को स्वयं लक्ष्मी ने सान्त्वना दी हो, नक्षत्र पति (चंद्रमा ने) रात्रि में पृथ्वी पर सुधा-वृष्टि की हो अथवा भक्त को विष्णु ने स्नेह-पाश में ले लिया हो।

इस गरीब परवर मेड़तिये (राठौड़) से मिलना क्या हुआ, मानों ग्रीष्म के अंत में आकाश पर इन्द्र (मेघ) छागया हो, सर्प ने वीणा-नाद सुना हो अथवा भयंकर दुष्काल में अनाज का कोठा खोल दिया गया हो।

इस दूदा राजवंश के मुखिया के मुख का दर्शन क्या हुआ, मानो चक्रवाक-दंपति को प्रातः सूर्य के दर्शन हुए हों, प्राणियों को पाप-नाशक प्रयत्न मिल गया हो अथवा प्राणरक्षक कोई सार वस्तु प्राप्त हो गई हो ।

दूसरे ही गोपीनाथ (वीरमदेव) के वंदनीय दर्शन क्या हुए मानो हृपीकेश (भगवान्) की सुलभचर्चा श्रवण की गई हो देवी ने इच्छितद्रव्य देने का वरदान दिया हो अथवा—'साथियों से बिछुड़ जाने का दुःख केवल प्रमाद है'—यह ज्ञान प्राप्त हो गया हो ।

राठौड़ बिशनसिंह

गीत — ७१.

लागां सिंधवीं राग रा पाना साकुरां भड़ाला लीदां,
 अभागां छड़ाला श्राभ छवंतो ता ठौड़ ।
आहसी मिलाला चखां चौल ने दखावे आछी,
 रोल ने वाजतां ढोलां लूटली राठौड़ ॥ १ ॥
साकुरां ऊपड़ी वागां हेकये आलमां सारी,
 हणु मार लंक ने दिखाया भारी हाथ ।
वेढीगारां रांगड़ा ऊं लगाई धगारां वातां,
 नगारां वागतां गांम लूटिया नीघात ॥ २ ॥
अड़क्के सारा रा वजे ठेलियां कपनी जंगा,
 मारुधर धरा का लेलिया मारा माल ।
काबला रुड़ंतां जांगी हांके नराताल काछी,
 आले काल वाली जालू सवाई गोपाल ॥ ३ ॥

खग्रां रुद्र छले चरणी अछंकां ध्रपासी खलां,
केवाणा सपासी सत्रां छूटो चक्र काल ।
पटेत धसंनो सीह छेडो छो जोधाण पती,
करेलो खेड़ेचो मारुधरा में कुलाल ॥ ४ ॥
(रच०— अज्ञात)

जब शहनाइयों में सिंधुराग गाया जाने लगा, तब राठोड़ विशनसिंह के अश्वारोही वीरों ने हाथों में भाले लेकर आकाश को आच्छादित कर दिया । उस देव-अंशधारी वीर (विशनसिंह) ने अपने अरुण-वर्ण चक्षुओं की शोभा बढ़ाते हुए ढोल बजवाकर रोल् नामक स्थान को लूट लिया ।

घोड़ों की रासें ऐंचते ही सब विपक्षी एवं उनकी जनता कंपायमान हो गई । (वास्तव में) उस विध्वंस करने वाले वीर (विशनसिंह) क्षत्रिय ने—लंका में हनुमान के द्वारा किये गये करायातों की तरह—शस्त्र प्रहार करते हुए अपनी ख्याति फैलादी तथा नक्कारे बजवाते हुए (कई) गाँव लूट लिये ।

उस प्रमत्तवीर राठौड़ (विशनसिंह) जो गोपालसिंह से भी सवाया था, ने तलवार बजाकर कंपनी के वीरों (अंग्रेजों) को ढकेल दिया और सारा माल लूटलिया । उस समय नक्कारे बजवाते हुए उस वीरने घोड़े बढ़ा कर प्रलय-सा दृश्य उपस्थित कर दिया ।

कवि कहता है—हे जोधपुरेश्वर ! आप इस सिंह-सदृश राठोड़-वीर विशनसिंह को छेड़ते तो हैं, परन्तु यह दुष्टों के रक्त से रणचण्डी को तृप्त कर देगा, छूटे हुए काल-चक्र के समान अपनी तलवार से शत्रुओं को नष्ट कर देगा और मरु-देश में कोलाहल मचादेगा ।

राठौड़ बिहारीदास (रायमलोत)

—: गीत ७२ :—

कमधां वड वडां तणा मुगता कर,
सह विधी विधि जोवतां स ग्रहास ।
तू लघू वेस वडा त्रिद लाजां,
दीपे भुजे बिहारीदास ॥ १ ॥

वाल लंकाल जोध वाहाला,
कलि चाला दूसग कल्याण ।
सोहँ तू दीजैं ताइ साचा,
वडा वंश चा वडा वाखांण ॥ २ ॥

खत्रवट प्रगट अभँग खेंड़ेचा,
भुजे ताहरे महा भल ।
कमधां मोह ऊजला कमधज,
राजै दूजा राइमल ॥ ३ ॥

भांजण खलां खाग सजियँ भुजि,
अँ वेदुक विरद मे विसाल ।
ऊँचे चीत ममोभ्रम ईमर,
कल कल कमल दिपँ किरणाल ॥ ४ ॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः हे बिहारीदास ! राठौड़ों मे तू बड़ा और अपने पूर्वजों का मोक्ष-दाता है। तेरे सब प्रकार के तरीकों को देखकर दूसरों का

परिहास होता है। अल्पायु होते हुए भी तेरी भुजाओं पर बड़े विरुद और लज्जा शोभा देती है।

हे वीर! तू महाबाहु और लंका को जला देने वाले हनुमान के समान योद्धा है। युद्ध-क्रीड़ा से तू दूसरा ही कल्याणदास प्रतीत होता है, तू महान् वंश का है, उसी प्रकार तेरी भारी एवं वास्तविक प्रशंसा तुझ पर फबती है।

हे अभंगवीर खेड़ेचे राठौड़! तेरा क्षात्रवट तेरी भुजाओं के बल पर प्रसिद्ध है। तू राठौड़ों की शोभा है, राठौड़ तेरे ही कारण उज्जवल हैं। तू दूसरा ही रायमल होकर शोभा पाता है।

हे वीर! तेरी भुजाएँ शत्रु-नाश के लिए उठी रहती हैं, इसी लिए तेरे भारी शत्रु-संहारक विरुद हैं और तू उच्चमना होकर ईश्वरदास की कला को धारण करने वाला है। अतः तेरा मुख सूर्य की तरह देदीप्यमान है।

राठौड़ वनमालीदास (विहारीदासोत मेड़तिया)

—: गीत ७३ :—

दलां थंभ आगल धरा वीरगुर दूसरौ,
रात्र राठौड़ अचड़ां रहावै।
मेड़ता मोड़ मेरा हिये मारका,
वनां जस तणा रिणि तूर वावै॥१॥
मांड सीमाड़ जग जैठ ऊँचा सिरो,
आनळे थाटि दूदां उजाळो।

वलां सौं ऊजला वेध वीठलहरौ,
करै ऊगै समां मेल काळौ ॥२॥
पाखरां रोल पर—गव दीजै पसर,
आखरां आप ऊणति उथालां।
लाखरां हेमरां साखरां लहसकरां,
भाखरा खरां सिरि खिवणि भालां ॥३॥
निभै नीसाण कुड़ कीनयरि नीभ्रसं,
निलै जस ऊजळै अभंग नामं।
खाग आचारि खत्र राढि पाघरि खड़ै,
विहारी समोभ्रम जगत वामै ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अथ:—यह वीर राठौड़ वनमालीदास द्वितीय वीर—गुरु है। सेना का स्तंभ और पृथ्वी की अर्गला (रक्षक) स्वरूप भी यही है। यह रण के लिए आतुर बना रहता है। मेड़तियों का शिरोमणि होकर मेरों के हृदय में चोट पहुँचाने के लिए यश की तुरही बजवाता रहता है।

दूदा के वंशको पवित्र करने वाला सर्प रूपी यह वीर सीमा पर बसने वालों के लिए बलवान वृषभ तुल्य है, संसार के उच्चवीरों में यह ज्येष्ठ है। इसके साथियों का समूह भी अटपटा (शत्रुओं पर वट खाता रहता) है। यह विट्ठल का वंशज आडावला (अरावली) के निवासी (मेरों) से अछद्म युद्ध करने के लिए प्रातः होते होते भिड़ता है।

यह कवियों द्वारा कथित अक्षरों (रचनाओं) पर उनकी कमी की पूर्ति करने वाला है और गरूड़ के समान वेग से चलने वाले घोड़ों

द्वारा आक्रमण कर हलचल मचा देता है। लाख २ की कीमत वाले घोड़ों पर चढ़े हुए अपने सगोत्रीय वीरों तथा सेना सहित अच्छे २ पर्वतों में भाले चमकाता रहता है।

किन्नर वंशज (गंधर्व) इसके निर्भयता के नक्कारे बजाते हैं और इसके पूर्वजों के पवित्र नाम का उच्चारण करते हुए इसका यशोगान करते रहते हैं। क्षात्र-मार्ग पर तलवार का प्रयोग करता (शत्रुओं पर) सीधा बढ़ता हुआ यह अपने पूर्वज गिहारीदास के समान है। संसार से विपरीत चलता (उन्मत्त) हुआ दिखाई देता है।

राठौड़ बाघा (नरबदोत, जगमालोत)

—: गीत ७४ :—

मौज वखांणिजैं मन मोट मारू,
भूजणि पूरैं भागि ।
वाघगें रिमगह विहँडे,
खलां ऊभैं खागि ॥ १ ॥

दांन में अणगेह दीटै,
सुकरि सौर सधार ।
जीपणो अरि थाट जुधि जुधि,
भांजणो गज मार ॥ २ ॥

सहस वल कमधज राव सहविवि,
ओपियौ ओनाड़ ।
निरहि खागे सभ्रम नरवद,
विसरि फौज विभाड़ ॥ ३ ॥

अमिनमौ रायांमल उजाथै,
घड़ा त्रिवधि घाइ ।
पुलै खल गै छांडि पोगिस,
वाघरै खग वाइ ॥ ४ ॥
(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे उदार मना राठौड़ बाघा ! तू पृथ्वी पर लोगों को भाग्यशाली बनाता रहता है, जिससे तेरी उदारता की उमंग की प्रशंसा होती है। तू शत्रुओं के मार्ग पर डट कर उन दुष्टों को भी अपनी तलवार उठा कर नष्ट करता रहता है।

हे राठौड़ ! तू जिन हाथों के कारण दान देता हुआ शोभा पाता है, उन्हीं द्वारा संहार करने का भी तेरी धूम मची हुई है। तू शत्रु समूह से भिड़ कर विजय पाता रहता और उनके बड़े २ हाथियों को नष्ट करता रहता है।

हे उदार राठौड़ ! तू सब प्रकार से सहस्र गुने दल से सुशोभित हो, वीर नरवद की भ्रांति देता है। उमस कर तलवार चलाता हुआ सेना को नष्ट कर डालता है।

हे वीर बाघा ! तूने नूतन रायमल की तरह उदय होकर शत्रुओं की त्रिविध सेना (गजारोही, अश्वारोही पैदल) को नष्ट कर दिया। शत्रु तेरे खड्गाघात से साहस छोड़ कर भाग गए।

राठौड़ वल्लू (गोपालदासोत, चाँपावत)

—: गीत ७४ :—

प्रलैकाल जल दौल पतसाह दल पनगिया,
मार भुज मजे जुध भार मारू।

इनि गिरां नरां अविलोप होवतां अकल,
मेर डिगियौ नहीं राव मारू ॥१॥
हूवै कलपंत हैं थाट चढ़िया हियै,
अवर डोलैं अनड़ सुहड़ ऊभामि।
वलू साका वधी नेति सिरि वांधियै,
सानगिर रहै जेसींघ—हर सांमि ॥२॥
कोप भूनेस असुरेस होइ एक क्रित,
अभँग पण, ऊगमण निसौ आदीत।
परवतां पहां इनि बूडतां पाधरै,
चळे नहैं मेरगिर मेर उत चीत ॥३॥
सौ भडां सरिस लख सात भागा सहस,
धूहड़ां रावतैं नमो खत्र धौंड़।
मौड़ कटकां तणौ सोइज हूवौ मरणि,
मयँक—हर मरण रा बाँधतौ मौड़ ॥४॥

(रच०— अज्ञात)

अर्थः— जब प्रलय काल के समुद्र की तरह डुबोती हुई बादशाह की सेना बढ़ी, तब पर्वतों के सदृश अन्य वीर तो लुप्त होगये; परन्तु राठौड़ वीर (बल्लू), युद्धार्थ शस्त्र ग्रहण कर सुमेरू पर्वत की तरह अडिग रहा।

कल्पान्त स्वरूप अश्वारोही (शाही सेना का) समूह जब ऊपर चढ़ आया, तब अन्य वीर जो पर्वतों के समान थे, भयभीत होकर डगमगाने लगगये, परन्तु जयसिंह का वंशज वीर बल्लू, नेतृत्व का

चिह्न धारण कर स्वर्णगिरि (सुमेरु पर्वत) की तरह (अडिग) होकर युद्ध में डटा रहा।

वीर (वल्लू) क्रोध करने में रुद्र अथवा दानवेश के समान था। एक मात्र उस अभंग वीर का उदय होना सूर्य के समान था। अन्य पर्वत काय नरेश तो उस सैन्यवारिधि में सहज ही डूब गये, परन्तु वह सुमेरु-सदृश वीर इधर से उधर (तिल मात्र भी) नहीं डिगा।

वीर वल्लू अपने साथियों सहित केवल सात संख्या में था; परन्तु (दुश्मनों के लिये) सौ वीरों के समान था। उसके सामने से हजारों योद्धा भाग गये। जिस प्रकार वह चाँदा का वंशज वीर-वल्लू सेनाओं का सिर मौड़ कहा जाता था, वैसा ही वह सिर पर सेहरा बांध कर युद्ध में मारा गया।

राठोड़ शेखा दुर्जन सालोत, पातावत

—: गीत ७६ :—

सिसरि गड़गड़े तूर सूरां चढ़ै वीर रसि,
अछर वरिवा करै चित उमेखा।
सामि छल देस छल वेस छल सामठां,
मांपना तांहरै भागि सेखा ॥१॥

निहसिया जोध नीसांण पख नींभसै,
धार आवाहि निरवाहि कुल धोड़।
पाट छोल जीवतौ तिसौ जुड़ियौ परव,
रूक हथ पागड़ौ छांडि राठौड़ ॥२॥

विच हुवौ होली खलां निरदलँ,
सीस मांईं वहै सांयणां सार।
तेणि जुधिवार भूझार दूजण तणौं,
मड़ अपड़ सौहियां आवरे मार ॥३॥

ऊजलै दीहि हींगोल—हर आभरण,
भाजती भीर भागथि मिलियौ।
ऊजला चिहुँर राता करै आवधां,
मुखिस—गुर ऊजली जोति मिलियौ ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वीर शेखा! जिस समय जोरों से तुरही आदि रण-वाद्य बजने लगे तथा अप्सरा-वरण की अभिलाषा से योद्धाओं में वीर रस छाने लगा, तब स्वामी, देश एवं क्षत्रियत्व के बाने की रक्षा करना तेरे हिस्से में आया।

युद्ध में जब योद्धा मारे जाने लगे तथा जोरों से नक्कारे बजने लगे, तब हे राठौड़ वीर! तू अपने वंश की टेक (मर्यादा) निभाता हुआ तलवार चलाने लगा और अंत में राज्यसिंहासन की रक्षा का जो तू अवसर चाहता था वह तुझे मिल ही गया तू अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये पैदल होकर खड्ग—युद्ध करने लगा।

हे दुर्जनशाल के वीर पुत्र! तू सहज ही में धराशायी होने वाला वीर नहीं था। तूने ही युद्ध—भार ग्रहण किया एवं सेनामें घुसकर शत्रुओं को विनष्ट करते हुए होलिकोत्सव रच दिया (रक्त रंजित होगया) और खड्गाघात से अपना मस्तक कटवा कर जुझार (युद्ध में मरने वाला वीर) नाम प्राप्त किया।

हे हिंगोल के वंशज ! तू कुल-भूषण है। तू अच्छा दिन पाकर शत्रु-समूह को काटता हुआ युद्ध भूमि में उतर पड़ा और अपने श्वेत केशों को रक्त से रँग कर ईश्वर की ज्योति में मिलगया।

राठौड़ शेरसिंह (मेड़तिया)

—: गीत ७५ :—

जामो दोयसे हाथ रो श्रंगां सो हाथ री पायजांमो,
समांमो त्रिलंग घेटो लपेटो सकाज।
आफालियाँ रालियाँ मांकड़े तुरी सदा नचाळै,
उजालियो बांकड़े बांकड़ा पणो आज ॥१॥

सिर पेच छोगा तोड़ा पर्यंता फिलंगी सेली,
फूलवेली रंगरेली एक पेचा फेर।
लागो मजगाह थांना लोयणां परी रा लोभा,
सोभा तोरां अटारां चढ़ाई मारू सेर ॥२॥

पीवां फूल पयालां छछाल जाणे छूटा पटां,
गुलाबां चांमरां भरां हमरां गुलाब।
अबीदा दोयणा वाली वाही घणी फोज अणो,
अबीटे अँगोटे मारू चाली घणो आब ॥३॥

सेल जमदाड़ खाग वेवे धारी वाही मही,
मजे के दाई हरा रो अजारे खाई सांक।
अमी रेल अमीराई पाई सो दिखाड़ आछी,
अड़ी गई प्रौढाई वालियाँ आटै आंक ॥४॥

पाव छडें नागाखेम जोधाखेम चढे पांणी,
सूर वागां खडे रंभा वरे सेरसाह।
ऊंटिया झलूसां साजां वींदरां समाजां आयो,
ंदरां मंदिरा छाजा हींकवा ओछाह ॥५॥

(रच०—कविराजकरणीदान)

दो सौ हाथ कपड़े का बनाहुआ जामा (अंगरखा), सौ हाथ कपड़े का बना हुआ पाजामा, उसके अनुरूप त्रिकोण पगड़ी और दुपट्टा (कटिबंध) धारण किये हुए बांके वीर (शेरसिंह) ने युद्ध-आपत्ति आने पर हमेशा की तरह घोड़े को सवेग बढ़ा कर अपने बांकेपन को उज्ज्वल कर दिया।

मस्तक पर सिरपेच, छोगा किलगी, जाड़िया, गले में पविआ (सुनहरे तारों की माला), शेली, रंगीन पुष्पों की माला तथा पैरों में आभूषण धारण किये हुए एवं घोड़े पर गजगाह डाले हुए उस अप्सरा (वरण) के इच्छुक राठौड़ शेरसिंह ने (युद्ध में) भिड़कर अपनी शोभा और अधिक बढ़ा दी।

मदिरा पिये हुए गले में गुलाब-पुष्प की माला डाले एवं गुलाब के इत्र का सौरभ फैलाते हुए उस राठौड़ वीर ने मस्त हाथी की तरह झपट कर अड़ाकू शत्रुओं की बहुत सी सेना को नष्ट करदिया और अपने बांकेपन (वीरत्व) पर (और अधिक) आब (कांति) चढ़ादी।

जब महाराजा अजितसिंह (जोधपुरेश्वर) का पुत्र सशंक हो गया, तब भाला, कटारी एवं दो-दो तलवारें कसकर हरा (हरिसिंह) का विजयी पुत्र (शेरसिंह) सज्जित हुआ और शस्त्र प्रहार कर उस अमीर ने नरेश्वर द्वारा जो सम्मान प्राप्त किया था, उसे सार्थक कर दिया और धृष्ट शत्रुओं से भिड़कर स्वामी के सिर पर एहसान कर दिया।

शेरसिंह ने भिड़कर नागोर के बख्तसिंह को भगा दिया और जोधपुर-नरेश रामसिंह के मुख पर कांति छा दी। (इस प्रकार) वह वीर बहादुरों से जूझता हुआ दुलहे की तरह अप्सरा का वरण कर स्वर्ग चला गया। (स्वर्ग में) उसे आया देखकर इन्द्रभवन में विशेष उत्सव मनाया गया।

राठौड़ शेरसिंह (मेड़तिया)

—: गीत ७८ :—

गजां माहरेस हाथलां जोध छूटो कुसळेस गाजे,
कायरो पराजे बोले बाहरै करूप।
अमामो जोधार खेत ओछाह रै गज आयौ,
सूर रांमसींघ साम्हो गह रे मरूप ॥१॥

छगा कोह ओप दीह अंधकार गैंण छायौ,
जुड़तो अघायो ऊं हरोलां सेन जार।
धग मांण अभैसींघ जायां देख चांपा धणी,
भृनिरास दंत जेम धायो तेग धार ॥२॥

राती चखां राती भाल काली सल्है काल रूप,
रुद्र चंडी वीरभद्र करतो आरोध।
दोढियो सांमहो आखे रायां सूं हरामी दूठ,
आंणे बिना माथा सूं बिराच वालो जोध ॥३॥

गजां नेजां तूट तेण ताप सूं अयास गाज,
जलेवां सरीत वाज वीती वीर जांम।
हग वाळे राह भांण रामसिंघ ग्रहो हूँतो,
सेरसिंघ माथा सारे उग्राहो संग्रांम ॥४॥

(रच० — कविया करनीदान)

अर्थ: - जिस प्रकार सिंह हाथियों पर झपटता है, उसी तरह वीर कुशलसिंह भी गर्जना करता हुआ दुश्मनों पर झपटा। उस भयानक वीर को देखकर कायर क्रंदन करते हुए भागने लगे। वीरता में छका हुआ वह उत्साही वीर युद्धक्षेत्र में रामसिंह (जोधपुरेश्वर) पर राहू के समान चढ़ आया।

उस वीर चांपावत अभयसिंह के सूर्य-रूपी पुत्र पर विनामस्तक दैत्य (राहू) की तरह कहर प्रहार कर रहा तब वह घोड़े की राम तेंच हरावल के योद्धाओं का भक्षण (नाश) कर तृप्त हो गया तथा आकाश तक अंधेरा छाने से दिन रात्रि-सा प्रतीत होने लगा।

अग्निज्वाला के समान लाल आंखों वाला वह वीर कवच कसने पर कालस्वरूप होगया एवं चण्डी तथा वीरभद्र का आह्वान करता हुआ (जोधपुर स्वामी रामसिंह के) असंख्य विरोधियों को साथ में लेकर बिना मस्तक के विप्रचित्त-पुत्र (राहू) की तरह (रामसिंह के) ऊपर झपटा।

उस वीर के आतंक से हाथियों पर फहराती हुई पताकायें टूट पड़ी आकाश भी प्रतिध्वनित हो उठा तथा तलवारों के चलने से एक प्रहर तक भयानक दृश्य छा गया। उस हरा (हरिसिंह) के पुत्र ने राहुरूप होकर राठौड़-नरेश रामसिंह को ग्रस ही लिया होता, यदि, तत्क्षण वीर शेरसिंह ने युद्ध में अपना मस्तक नहीं कटाया होता।

राठौड़ शेरसिंह (मेड़तिया)

—: गीत ७६ :—

अखंग लपेटा बंध गजकंध तोडण अगड़,
तेण धारक मगज माण तेरा ।
निहंग उतोल भड़ राढ़ि नेत्रायतां,
सदा अड़पायतां धाड़ि सेरा ॥१॥

इकात्रँध कमँध आरक चखम डोरियां,
गिरँद. तारक रिहक समे गजगाह ।
मदारा जोध वेढ़ाक मारक सत्रां,
अभीडा पेच धारक निखँग बाह ॥२॥

अखंग भड़ डाक बागी महण तटाका,
रिमा घड़ डहण. आमक चहण रंम ।
असमग गहण मातां खहण अनाडा,
खांगड़ा कमँध धाड़ा अड़ीखम ॥३॥

बाँकड़ा मरद. हद गीत ग्रद बांकड़ा,
मरद लहरीक बांकीम तण मेच ।
सेर धारे कमल बणे सोभा मणां,
पापड़े डीपड़े बांकड़ा पेच ॥४॥

(रचः कविया करणीदान)

अर्थ—त्रिरारा पगड़ी बांधनेवाले, मद्गायातों से हाथियोंके स्कंध तोड़ देने वाले, राठौड़वंश, की त्रयोदश शाखाओं को गौरवान्वित

करने वाले आकाश को उठाने वाले, बर्छीधारियों से भिड़ने वाले - शत्रुओं से अड़पड़ने वाले वीर शेरसिंह ! तुझे धन्य है।

हे सरदारसिंह के वीर पुत्र ! तू (दुश्मनोंपर) धावा ... वाला (अथवा तेरे यहां नक्कारे बजते रहते हैं), अरुण सूर्य समान लाल नेत्रों वाला, पहाड़ों को पानी में तैरा देनेवाला (... का अवतार), ग्राह द्वारा आपत्ति में पड़े गज को बचाने ... (विष्णु), मारकाट करने वाले शत्रुओं को नष्ट करनेवाला, ... के अटपटे पेच रखने वाला और कंधे पर भाथा कसा रखने वाला है।

हे त्रिकोण पगड़ी धारण करने वाले वीर ! तेरा यश समुद्र तट तक फैल गया है। तू शत्रु—सेना का नाशक, रंभा का प्रेमी ... युद्ध क्षेत्र रूपी अखाड़े में उतर कर प्रमत्त वीरों का विनाश कर्त्ता है। हे दृढ स्तंभरूपी खड्गधारी राठौड़ वीर ! तुझे धन्य है।

हे बहादुर वीर ! तू स्वयं, तेरा यशोगान, उदारता की लहरें और अंगवट (स्वाभिमान) सब के सब बाँके हैं। तेरे मस्तक पर बड़ी पगड़ी के बांके पेच भी अधिक शोभा देते हैं।

राठौड़ श्यामसिंह (कर्मसेनोत एवं चन्द्रसेनोत)

—: गीत ८० :—

पर धरा प्रगट मोटा दन पांखे,
जैत जुझार महा जुध जीत।
ऊर सधीर छजै भुजि सांमा,
चंद तणो वाहिम वड चीत ॥१॥

दीदे जस माखै वंस दीपक,
सारां बलि जीपण समर।
कमधज सोहै सु वपि कमाउत,
मालाउत वालो मछ्र ॥२॥

पौरिस अतघ बखाणै पर खँडि,
वैर त्रिमादण खाग वह।
अगर-हरा सोहै भुजि उग्रित,
गंग कलोधर तणो गह ॥३॥

खेद सुपह मोटा व्रिद खाटण,
वेढुक वित्ति भरियै खत्रवाट।
पाटि जेणि राजै पाटोधर,
कीरति तपै न लागै काट ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे श्यामसिंह ! तू अपने सौभाग्य के कारण पराये भू-भाग में भी प्रसिद्ध है। महान् युद्धों में विजय पाने के कारण लोग तुझे विजयी कहकर तेरी वन्दना करते हैं। तेरी भुजाओं पर वीरता शोभा देती है। उदार चित्त चन्द्रसेन के समान तुझ में बड़प्पन है।

हे राठौड़ वीर ! तेरा यश देदीप्यमान होने से तू कुल-दीपक कहाता है और युद्ध विजयी वीरों में तू श्रेष्ठ एवं बलवान है। कर्मसेन के समान तू सुन्दरकाय और माला (मालदेव) के समान मस्ताना है।

हे अगरा (उग्रसेन) के वंशज ! पराये भू-भाग में भी तेरे पुरुषार्थ की प्रशंसा होती है। शत्रुओं को नष्ट करने के लिए तेरी

भुजाएँ उठी रहती हैं और तू तलवार चलाता रहता है। गांगा के वंशजों के समान ही तुझ में गंभीरता है!

हे खेड़ेचे (राठौड़) नरेश! तू बड़े २ विरुद प्राप्त करता रहता है। तू क्षात्र-मार्ग पर चलता हुआ शत्रुनाश की ओर चित्त लगाए रहता है। अतः तू जिस सिंहासन को सुशोभित किए हुए है, उस पर आसीन होने वालों की कीर्ति को कभी कालिमा ने स्पर्श तक नहीं किया।

राठौड़ सूरजमल (मेड़तिया):—

—: गीत ८१ :—

वेडा झोकणा अमोडा रंभा रोकणा(विमाण)वेता,
बोकुणा सकत्ती रत्ती ठोकणा असंभ।
नमो सत्रीवट्टां चाला कपट्टा होता निराला,
खांगड़े पापड़े (वाला) काला जैतखम ॥१॥

जूथमे जमाती जिको सही जांणे मद्र-जाती,
लायणा प्रभाती तेज ग्रभू घाती लाज।
मद ग छाकिया जेम मेंडाका उछाल मेळे,
नाकिया फुलती झांही पछेटे नाराज ॥२॥

रचे आणाहट्टां दवाट्टां सेर सट्टां,
खावट्टां फेंकटां नेट्टां धूरथट्टां खेस।
नजागं गृधट्टां पग फांकट्टां थकट्टां नट्टां,
कपट्टां न गीके, धजो, दूजो कुसळेस ॥३॥

चढंती क्रामती रत्ती प्रक्रती विभ्रत्ती चत्ती,
कीरत्ती बरत्ती इत्ती दत्ती रोर काप।
जेत हत्ती नेत रत्ती परत्ती कछोट जत्ती,
जपे मेदपाट पत्ती विजाई प्रताप ॥४॥
(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे तिरछी पगड़ी बांधने वाले प्रमत्त वीर ! तेरा क्षात्र-विनोद (क्षत्रियोचित युद्ध-क्रीड़ा) वंदनीय है। तू घोड़े को सवेग बढ़ाने वाला, अप्सराओं के चलते हुए विमानों को रोक देने वाला, शक्ति (देवी) को रक्त-पान कराने वाला, बलवानों को आहत करने वाला और विपत्तियों द्वारा छद्म युद्ध होने पर अडिग विजयस्तंभ बन जाने वाला है।

हे वीर! सैन्य समूह में जो प्रमुख वीर हैं, वे तुझे भद्रजाति हाथी के समान समझते हैं। तेरे अरुणनेत्र प्रातःकालीन सूर्योदय की अरुणिमा को लिये हुए हैं, जिनमें ईश्वर ने (क्षत्रियोचित) लज्जा को भी स्थान दे रखा है। तू मदिरोन्मत्त-सा होकर घोड़े को कुदाता हुआ (दुश्मनों का) सामना करता और पुष्प वर्षा होते हुए (शत्रुओं पर) शस्त्र वर्षा करता है।

हे सूरजमल ! तू दूसरा ही कुशलसिंह है तू अपनी कुशलता के लिये आशीर्वाद देने वाले कवियों एवं द्विजों आदि (गुरुजनों) को पुश्त दर पुश्त तक के लिये भूदान कर उसके ताम्रपत्र देता हुआ कृपणों के मुख पर क्षार डलवा देता है। और भारी शत्रु और भारी शत्रु-समूह को युद्ध से भगाता रहता है। तुझे नट के समान चपलता से तलवार चलाता हुआ देख कर अप्सरायें घूंघट से कटाक्ष करती हैं।

हे वीर ! तू छली पुरुषों (छद्म युद्ध करने वालों) से कभी प्रसन्न नहीं होता ।

हे वीर ! तू विशेष भाग्यशाली है । स्वभाव से ही तू प्रत्येक से प्रेम करता है और उदारचित्त ? है । हे दानी ! तूने अपना यश सीमा-पर्यंत फैला दिया है, जिससे दारिद्र नष्ट हो गया । जयश्री तेरे हाथों में निवास करती है । दत्तचित्त होकर तू सेना का नेतृत्व करता है । परस्त्री के लिये तू यतिरूप (संयमी) बनजाता है । यही कारण है, कि मेवाड़ेश्वर भी तुझे तेरे पूर्वज प्रतापसिंह के सदृश वीर कहते हैं ।

राठौड़ सुजानसिंह (ईसरोत)

—: गीत ८२ :—

ऊपजियै विखै कौपियै असपति,
चीत अडोल प्रभति चढ़ियौ ।
सक लोकीक ऊजलौ सूजौ,
ताइ अपलोकि न आमढ़ियौ ॥१॥

हैवै राव रूठै हिंदुवांणै,
ग्रळै ताप उरि परवरिया ।
आचरम तणा पटा आसाउत,
उतवँगि चाढि न आदरिया ॥२॥

निसमैं दीदड़ौ लियै ब्रहमँड,
अणभँग भुजि ओडै असमांन ।

मेळै नहँ मिलियौ मेड़तियौ,
मन ऊजळै अभिनमौ मान ॥३॥

आधख वधे सुजाण अतुल बल,
असुरां सुरां विचै अनिमंध।
पाट भगत अवियाट खत्रिपण,
काट अलागै तपै कमंध ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे वीर सुजानसिंह ! तेरे सिर पर आपत्ति आगई और बादशाह भी रुष्ट होगया, फिर भी तेरा चित्त विचलित नहीं हुआ। तूने (अपने) प्रभुत्व को नहीं खोया। क्योंकि तू संसार में प्रसिद्ध वीर और उज्ज्वल माना जाता है। इसीलिए तूने बुरे लोगों (यवनों) से संपर्क नहीं किया।

अश्वारोही सेना के स्वामी (बादशाह) के रुष्ट होने पर उसके प्रलय-सदृश ताप से प्रत्येक हिन्दू वीर पतित होगया; परन्तु हे आशकर्ण के वंशज ! तूने शाह द्वारा अधर्म पूर्वक दिए जाने वाले पट्टों (जागीर की सनदों) को सिर पर चढ़ा कर उनका सम्मान नहीं किया।

हे मेड़तिये (राठौड़) वीर ! तू तो नूतन मानसिंह है। आज का समय आश्चर्यजनक है। सारा विश्व (शाह) के सामने हाथ फैलाता है। परन्तु तेरी अभंग भुजाओं ने आकाश का स्पर्श कर लिया है। हे उज्ज्वल मनवाले ! तू ही उस मेले में सम्मिलित नहीं हुआ (शाही सेवा स्वीकार नहीं की)।

हे अतुलबली सुजानसिंह! तेरा साहस अकथनीय है। तू देव और दानवों से भी विशिष्ट है। हे राज्यसिंहासन के रक्षक! तेरा क्षत्रियत्व प्रसिद्ध है और तू निष्कलंक राज्य करता है।

राठौड़ सुजानसिंह (आसकरणोत, ईसरदासोत)

—: गीत ८३ :—

ओखालण सत्रां ऊभियै असिमर
पाट ऊधोरण अघट प्रमांण।
तू ई सरे अभिनमा ईसर,
सींगालौ ऊजलौ सुजांण ॥१॥

रिम गेहलण रूप रज रावण,
घाये भिड़ि भांजण थट घाट।
अतुली बल अणकल आसाउत,
कमधज धमल अलागै काट ॥२॥

खल खेगरण वडा त्रिद खाटण,
वैरां सू चालवण विरोध।
सामि सनाह दुबाहा सामँत,
जगि जणियार कलोधर जोध ॥३॥

सक सीमाड़ सांड नवसहसा,
है विधि अजुवालण कुलवाट।

धप दाडिम सारिखो वेगड़,
मान कलोधर लोह मगट ॥४॥
(र० —अज्ञात)

अर्थः—हे नूतन ईश्वरदास कहे जाने वाले सुजानसिंह ! तू धवल वृषभ तुल्य (बलशाली) है, जो अपने दोनों हाथों में ग्रहण की हुई (शृंगरूपी) तलवारों द्वारा शत्रुओं को फेंक देने वाला और राज्य-सिंहासन की रक्षा कर असंभव को संभव करने वाला एवं (बलवानों) में तू ही श्रेष्ठ है।

हे अवर्णनीय एवं अतुल बलशाली राठौड़ ! तू धवल वृषभ तुल्य है। तेरे शरीर पर कहीं भी काला दाग (कलंक) नहीं। तू शत्रुओं को रौंदने वाला, रजोगुण प्रधान और शत्रु-समूह से भिड़ कर उसे नष्ट कर देने वाला है।

हे जोधा की कला को धारण करने वाले वीर ! तू संसार में धवल वृषभ तुल्य है। शत्रुओं से छेड़छाड़ कर उन्हें काट कर तू बड़े २ विरद प्राप्त करने वाला और अपने दोनों हाथों से स्वामी की रक्षा करने को कवच तुल्य सामन्त है।

हे मानसिंह की कला को धारण वाले राठौड़ वीर ! तू सीमा पर रहने वाले सिक्का धारियों (प्रसिद्ध युद्ध कर्ताओं) में महान् वृषभ है। तू कुल-मार्ग को दोनों तरह से पवित्र करने वाला है। एक ओर तुम्हारा शरीर उच्च वृषभ सा बलिष्ठ है, तो दूसरी ओर तुम्हारे शस्त्र-मार देने वाले हैं।

हे अतुलबली सुजानसिंह ! तेरा साहस अकथनीय है। तू देव और दानवों से भी विशिष्ट है। हे राज्यसिंहासन के रक्षक ! तेरा क्षत्रियत्व प्रसिद्ध है और तू निष्कलंक राज्य करता है।

राठौड़ सुजानसिंह (आसकरणोत, ईसरदासोत)

—: गीत ८३ :—

ओखालण सत्रां ऊभियै असिमर
पाट ऊधोरण अघट प्रमांण ।
तूं ई सरे अमिनमा ईसर,
सींगालो ऊजलो सुजांण ॥१॥

रिम रेहलण रूप रज राखण,
घाये मिढ़ि भांजण थट घाट ।
अतुली बल़ अणकल़ आसाउत,
कमधज धमल़ अलागै काट ॥२॥

खल़ खेगरण वडा ब्रिद खाटण,
वैरां सूं चालवण विरोध ।
सामि सनाह दुबाहा सामँत,
जगि जणियार कलोधर जोध ॥३॥

सक सीमाड़ सांड नवसहसा,
दै विधि अजुवालण कुल़वाट ।

पप दाडिम सारिखो वेगड़,
मान कलोधर लोह मराट ॥४॥
(रच० – अज्ञात)

अर्थः—हे नूतन ईश्वरदास कहे जाने वाले सुजानसिंह ! तू धवल वृषभ तुल्य (बलशाली) है, जो अपने दोनों हाथों में ग्रहण की हुई (शृंगरूपी) तलवारों द्वारा शत्रुओं को फेंक देने वाला और राज्य-सिंहासन की रक्षा कर असंभव को संभव करने वाला एवं (बलवानों) में तू ही श्रेष्ठ है।

हे अवर्णनीय एवं अतुल बलशाली राठौड़ ! तू धवल वृषभ तुल्य है। तेरे शरीर पर कहीं भी काला दाग (कलंक) नहीं। तू शत्रुओं को रौंदने वाला, रजोगुण प्रधान और शत्रु-समूह से भिड़ कर उसे नष्ट कर देने वाला है।

हे जोधा की कला को धारण करने वाले वीर ! तू समार में धवल वृषभ तुल्य है। शत्रुओं से छेड़छाड़ कर उन्हें काट कर तू बड़े २ विरुद प्राप्त करने वाला और अपने दोनों हाथों से स्वामी की रक्षा करने को कवच तुल्य सामन्त है।

हे मानसिंह की कला को धारण वाले राठौड़ वीर ! तू सीमा पर रहने वाले सिक्का धारियों (प्रसिद्ध युद्ध कर्ताओं) में महान् वृषभ है। तू कुल-मार्ग को दोनों तरह से पवित्र करने वाला है। एक ओर तुम्हारा शरीर उच्च वृषभ सा बलिष्ठ है, तो दूसरी ओर तुम्हारे शस्त्र-मार देने वाले हैं।

राठौड़ सुजानसिंह (रायसिंहोत, चाँदावत)

—: गीत ८४ :—

पर घड़ा वरण पर चाडां दैसण,
जगत वखांणै चद जिम।
खाटै खग नवा खैडेचो,
करे पुराणा वैर किम ॥१॥

जगि जग जेठ पर छटी जागे,
रायासिंघ तणौ रढ–रांण।
ढीलै केम उथालण ढालां
सुजि केवा आप रा सुजांण ॥२॥

मांझी मार सारि मुणसां गुर,
वीरारसि गज फौज वरै।
केवां धणी काजि के वेलां,
कविलौ नह ढाढगल करै ॥३॥

उग्राहियौ रांम अतुली वल,
हाथालां दीपियौ हव।
दैख तुहारौ चंद दूसरा,
वैरां घसि घाए विसव ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थ:—हे राठौड़ वीर ! तू दूसरों की सेना पर विजय पाने वाला तथा दूसरों की विपत्ति में सम्मिलित होने वाला है, अतः संसार तुझे,

तेरे पुरुष चाँदा के तुल्य मान कर प्रशंसा करता हुआ कहता है कि यह शत्रुओं की शत्रुता को पुरानी नहीं होने देता। तलवार के बल पर उनके साथ नई २ शत्रुता बनाता रहता है।

हे रायसिंह के पुत्र (या वंशज) सुजानसिंह! तू संसार के वीरों में सबसे बड़ा जागृत वीर माना जाता है। दूसरे की सहायता करने के लिए तू सदा तत्पर रहता है। हठीले रावण के समान तू ढालधारी, शत्रुओं को पछाड़ने में कभी विलम्ब नहीं करता, क्योंकि तू यह जानता है कि शत्रु कभी अपने नहीं होते।

हे वाराह तुल्य वीर! तू श्रेष्ठ पुरुषों का गुरु, प्रमुख शत्रुओं का नाशक और वीरता में आकर गज-सेनाओं पर विजय पाने वाला है। स्वामी के शत्रुओं के (विनाश) के लिए तूने कभी देरी नहीं की और न उनके साथ भलमनसाहत का ही व्यवहार किया (क्रूर बना रहा)।

हे चाँदा के समान अतुल बली वीर! तूने (अपने स्वामी) रामसिंह को बचा लिया, जिससे तेरा बाहु बल प्रकाश में आगया। तूने शत्रुओं को रगड़ कर पृथ्वी में घुसेड़ दिया।

राठौड़ सबलसिंह (उदयसिंहोत तथा रायमलोत)

—: गीत ८४ :—

जोअंतां खाग तियाग जोअंतां,
अतुली बल सह त्रिधि अकल।
परियां तणा भुजे पाटोधर,
सबला त्रिद छाजै सबल॥१॥

असिमर त्रै पेखतां असंकित,
सूरां गूरू जग पुड़ि म प्रमांण।
सुकरै दादा णा सिंघ सुत,
वड कमधां ओपे वाखांण ॥२॥

सुजड़े चाड़ अचल हर सांमी,
पिसणा रो र उथापि पीह।
कुल आप रे तणा आवरि क्रित,
सयलि प्रमति चाढिया सीह ॥३॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—हे (अपने पिता के) सिंहासन पर सुशोभित होने वाले वीर सबलसिंह ! खड्ग ग्रहण करने और त्याग करने (दान देने) में तेरे समान कोई नहीं है और सब प्रकार से तू अवर्णनीय है। अपने पुरुषार्थों के विरुद तेरी भुजाओं पर शोभा देते हैं।

निः संकोच तलवार पकड़ना और दान देना, ये दोनों बातें देखते हुए संसार में तुझे वीर गुरु कहना प्रमाण युक्त है। हे राठौड़ सिंहा (उदयसिंह) के पुत्र ! तेरे दोनों हाथों की प्रशंसा तेरे पितामह के समान ही है।

हे अचला (अचलदास) के पौत्र (या वंशज)! शत्रु और दरिद्रता को तू क्रमशः तलवार तथा प्रेम से हटा देता है। यह तेरे वंश का स्वभाव है। उस कीर्ति का सम्मान कर तू ने उसे सहज ही अधिक देदीप्यमान कर दिया है।

राठौड़ हरिसिंह (केसरसिंहोत, राजाउत)

—: गीत ८६ :—

चित चाउ वधै खत्रवाट न चूकै,
महि मंडण छिलतै मछरि।
हेड़ण हैं—थाटां हाथालौ,
हरी वडालौ गंग—हरि ॥१॥

केहरि तणौ धारियै कुळ क्रित,
दळ खरत पूरियौ दुभ्काल।
मोड़ण गज डसण रात्र मारू,
महण म्रजाद अभिनमौ माल ॥२॥

ऊदा—हरौ वडिम आवरियै,
गढ़पति भरियौ महा गहि।
जुध मोट जीपण जोधपुरौ,
मोटे कुळ आभरण महि ॥३॥

थाल धमळ धूहड़ थिरदां पति,
दळ—नाइक ऊदमादम।
केहरि पिना जगड़ बंधव का,
दोइ जस रथ खंचै दुगम ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—वीर हरिसिंह के चित्त में उत्साह की वृद्धि होती रहती है। यह क्षात्र-मार्ग को भूलता नहीं। अपने कराघात द्वारा अश्वारोही

समूह को नष्ट करने में यह अपने सिंह तुल्य पूर्वज गांगा के समान है ।

केशरीसिंह का पुत्र यह राठौड़ वीर अपने कुल-कर्म पर चलने, सेना में भयानक वीरता प्रदर्शित करने, हाथियों के दांत मोड़ देने और नूतन मालदेव कहला कर समुद्र के समान मर्यादा का पालन करने वाला है ।

ऊदा का वंशज यह दुर्गाधिप मरु देशीय वीर अपने पूर्वजों के समान ही व्यवहार कुशल तथा महान् गंभीर है । बड़े २ युद्धों में विजयी होकर यह अपने महान् कुल का विभूषण कहा जाता है ।

यह राठौड़ वीर, धवल वृषभ तुल्य होकर विरुद धारण करने वाला है । युद्ध के समय यही सेनापति माना जाता तथा अपने पिता केशरी-सिंह और भ्राता जगा के यश रूपी दो-दो भारी रथों को यह अकेला खींच कर आगे बढ़ाने वाला है ।

राठौड़ हरिसिंह (राजावत)

—: गीत ८७ :—

अति दाखै हेत जाणि आपांणां,
घणा दान सनमांन घणै ।
करता करै जमारौ कवियण,
तो वारै हरियंद तणै ॥१॥

आडा सहै अणथि ऊथापै,
भल रूपकां वधारै भाउ ।
रेख अनंत करै जौ रेखां,
राजि तणौ राठौड़ां राउ ॥२॥

आप प्रमाणि चहाँई आखल,
केहरि कौ मोटा करग।
जौ अवतार दियै हरि जाचण,
जरू वार साधार जग ॥३॥

ऊदा—हरौ ऊभियै असिमरि,
ओपै दिली दलां अणी।
प्रंमिया जनम तणौ फल पावां,
पृहड़ राउ पामियै धणी ॥४॥

(रच०—अज्ञात)

अर्थः—कवि कहता है कि यह अपना समझ कर विशेष प्रेम प्रदर्शित करता और विशेष सम्मान के साथ दान देता है। अतः हे प्रभो ! यदि कवि जाति में जन्म दे तो हरिसिंह का आश्रित बनाना।

अंट शंट बात कहने पर भी यह अनहोनी बात को चित्त में स्थान नहीं देता और अच्छी कविता पर अधिक सद्भाव प्रदर्शित करता है। अतः हे प्रभो ! यदि कवि अथवा रजकण भी बनाए तो इस राठौड़ के भू-भाग पर बनाना।

यह महाबाहु केशरीसिंह का पुत्र कवियों को अपने समान, अपितु अपने से भी अधिक मानता है। हे हरि ! यदि याचक बनावे तो अवश्य ही इस संसार के आश्रय रूपी वीर के यहाँ बनाना।

यह ऊदा का वंशज तलवार उठाए हुए दिल्लीश्वर की सेना के अग्रभाग में सुशोभित होता है। हे प्रभो ! यदि कवि जाति में जन्म दे सफल बनाना है, तो इस राठौड़ वीर को ही स्वामी बनाना।

राठौड़ हरिसिंह (या हरराज)

—: गीत ८८ :—

दलां सावलां स गाह हींदू राह वे वखाणे रीति,
धरे आसि थांमा करे मालदेया धौड़।
केवाण अभंग अ करग संगि सीसि कीधै,
राठौड़ां उजाळे हरी ऊजलौ राठौड़ ॥१॥

धमंके असहां सीस जस रा नीसांण ध्रीवै,
विरदां वधारै तणा जग हुवां वंध।
केहरी सुजाउ करां ऊधरा वडाला क्रित,
कमंधां भवाड़े भला वडालौ कमंध ॥२॥

आउलां सुभट्टां थाट खत्रवाट भुजे ओपे,
लाख गज वाज मौजां गजां—फौजां लोध।
जुधे ऊँतवंत जग जेठी वंस छलां जागै,
जोधपुरां सोह चाड़ै अमिनमौ जोध ॥३॥

हेडै घण थाट हाथां हेक कुलवाट हालै,
गाढां गुरु दूजो गंग गढां गंजे गाउ।
आगल दिलेस संन ऊदा—हरौ ऊचीताण,
राजे रज रज रखपाल मारू राउ ॥४॥

(र०—अज्ञात)

अर्थः—यह हिन्दू वीर राठौड़ हरिसिंह (या हरिराज) जब भाला ग्रहण कर सेना में सुशोभित होता है, तब दोनों दीन (हिन्दू-

यवन) इसके युद्ध के तरीके की प्रशंसा करते हैं। धूहड़ (राठौड़) मालदेव का यह वंशज अपने स्तंभ रूपी हाथों पर आकाश को उठा लेता और युद्ध में अभंग शत्रुओं के सिर पर तलवार चलाकर राठौड़ों को उज्ज्वल कर बताता है।

जब इसके यश के नक्कारे बजते हैं, तब विरोधियों के मस्तक में चोट पहुँचती है। इस के विरुदों में वृद्धि होती देख कर संसार इस की वन्दना करता है। इस केशरीसिंह के पुत्र के हाथ (युद्ध और दान) के लिए उठे रहते हैं, जिससे विशेष कीर्तिमान होकर यह राठौड़ वीर, राठौड़ों को अच्छा कहलाता है।

अपने वट खाते हुए साथियों के समूह सहित इसकी भुजाओं पर छात्र-वट शोभा पाता है और उमंग के साथ अपने लाखों हाथी और घोड़ों को बढ़ा कर गज-सेना को कुचल देता है। यह युद्ध विजयी संसार में बड़ा कहा जाने वाला सदा अपने वंश की रक्षा के लिए जाग्रत रहता है। यह नूतन जोधा, जोधा के वंशजों की शोभा बढ़ाता रहता है।

यह अपने हाथों से विशेष शत्रु-समूह को विदीर्ण कर केवल अपने कुल-मार्ग पर चलता रहता है। दृढ़ वीरों में यह दूसरा ही गांगा है। यह शत्रुओं के दुर्गों सहित ग्रामों को नष्ट कर देता है। ऊदा का वंशज यह राठौड़ वीर दिल्लीश्वर की सेना के लिए अर्गला बन कर विशेष हठ ग्रहण करता और राज्य एवं रजोगुण का रक्षक बन शोभा पाता है।